MPHIN34696/6/9/17/TC

वर्ष-1, अंक-1, अगस्त-सितम्बर 2017 ₹ 25/-

कला समय

कला और विचार की द्वैमासिकी

पसीने की नदी के अथक गीत भागीरथ

– डॉ. कुँअर बेचैन

आत्मकथ्य : 'नदी पसीने की' ऐसी ही मेहनत के पसीने की कुछ बूँदों का उज्ज्वल और गौरवशाली बहाव है जो इन्सान को प्रगति के रास्ते पर ले जाने का हौसला देता है। यह बात अलग रही कि इन बूँदों को महल-अटारी पर छिड़के गये इत्र की खुशबुएँ उपेक्षित करती रही हैं, किन्तु यह उपेक्षा कभी भी मेहनत के पसीने की नदी को पददलित नहीं कर सकती, उसके प्राकृतिक बहाव को रोक नहीं सकती। गीत रोशनी की लकीर पर लिखा हुआ वह शब्द है जो कभी पक्षियों की चहचहाहट कभी फूलों की महक और कभी सुबह की ताजा हवा का झोका लेकर अवतरित होता है।

1. री क़लम! मत टेकना घुटने

काट दे सिर
या चिने कोई तुझे दीवार में।
री क़लम! मत टेकना, घुटने किसी दरबार में!!

जो क़लम व्यक्तित्व अपना ख़ुद बना पाती नहीं
रात-दिन लेटी रहे, दुख-द्वार तक जाती नहीं,
सिर्फ़ तारीफें, लिखे, जो दर्द को गाती नहीं
वह क़लम है खोखली, फ़नकार की थाती नहीं।
डायरी में
या कि हो तेरी कथा अख़बार में
री क़लम! मत टेकना, घुटने किसी दरबार में!!

हो सके तो, तू पसीने में नहाकर बैठना
आह, आँसू, दर्द, ग़म के पास जाकर बैठना,
हर दुखी के दुक्ख का किस्सा सुनाकर बैठना
सो रहे हों जो उन्हें फिर से जगाकर बैठना।
तू सदा ही
गीत गाना स्वेद के सत्कार में।
री क़लम! मत टेकना घुटने किसी दरबार में!!

कब झुकी दरबार में तुलसी-कबीरा की क़लम
महल से निकली, बसी, जन-बीच मीरा की क़लम,
स्वर्ण के सिंहासनों से भी बहुत ऊँची उठी
मंदिरों में बैठ सूरा-से फ़कीरा की क़लम।
सुर इन्हीं के ही बसें
मन-बीन की झंकार में
री क़लम! मत टेकना घुटने किसी दरबार में!!

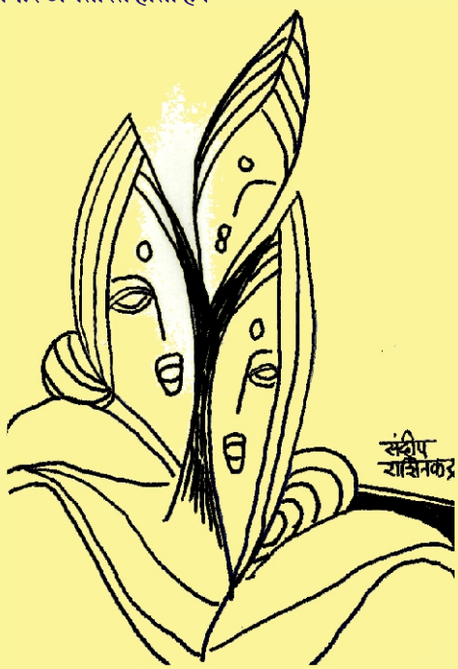

2. दुखी न हो

तुझे मिला नेपथ्य
(मंच के बदले)
दुखी न हो
तू है गीत
तुझे तो सारी दुनिया जानेगी!

दरवाज़ों के बाहर
तुझे बिठाया ईर्ष्या ने
करके कमरा बंद
शोहरतों को खुद में बाँटा,
अपने थमे पाँव में
सबने पहिये लगा लिए
तेरे चलते पावों में
सब चुभो गये काँटा।
तुझे दिया हाशिया
(मध्य के बदले)
दुखी न हो,
समझदार हर आँख
तुझे ही शीर्षक मानेगी!

गुटबन्दी के बाहर था
इसलिये अकेला था,
तेरे पीछे जड़ विरोध का
लम्बा मेला था।
तेरे आसन से तुझको
पटरी पर ला पटका,
छल हो गया दुकान
अभी जो कल तक ठेला था
तू निकलेगा स्वर्ण
(धूल में छनकर)
दुखी न हो,
कब तक कविता को
आख़िर छल-छलनी छानेगी!

सम्पर्क :- 2 एफ-51, नेहरू नगर,
ग़ाजियाबाद-201001
(उ.प्र.) मो.-0120-2793057

कला समय

कला और विचार की द्वैमासिक पत्रिका

अगस्त-सितम्बर 2017

सम्पादकीय एवं ग्राहकीय संपर्क -

जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016
फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com

सहयोग राशि (प्रति अंक) : पच्चीस रूपये

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	: 150 /-	(व्यक्तिगत)
	: 175 /-	(संस्थागत)
द्वैवार्षिक	: 300 /-	(व्यक्तिगत)
	: 350 /-	(संस्थागत)
चार वर्ष	: 500 /-	(व्यक्तिगत)
	: 600 /-	(संस्थागत)
आजीवन	: 5,000 /-	(व्यक्तिगत)
	: 6,000 /-	(संस्थागत)

(कृपया सदस्यता शुल्क ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा कला समय के नाम से उक्त पते पर भेंजे)

कला समय पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के लिए सम्पादकीय सहमति अनिवार्य नहीं। पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद, भोपाल, न्यायालय के अधीन रहेंगे।

सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक/ अव्यवसायिक संपादक, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा दृष्टि ऑफसेट, प्रेस कॉम्पलेक्स, एम.पी. नगर, जोन-1, भोपाल(म.प्र.) 462011 से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016 से प्रकाशित।

सम्पादक
भँवरलाल श्रीवास
bhanwarlalshrivas@gmail.com

सह सम्पादक
लक्ष्मीकांत जवणे
laxmikantjawney@gmail.com
M.- 099936 22228

कानूनी सलाहकार
जयंत कुमार मेंढे (एडवोकेट)

विशेष प्रतिनिधि
गोपेश वाजपेयी
M.- 09424300234

साहित्य परामर्श
सजल मालवीय
M.- 09926310994

प्रबंध सम्पादक
नरिन्दर कौर

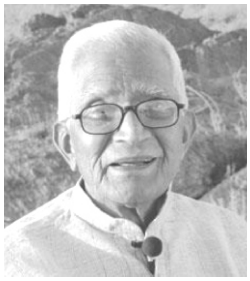

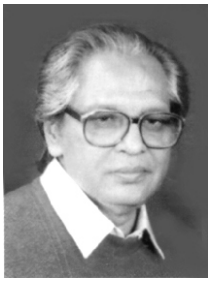

इस बार

- सम्पादकीय
  भँवरलाल श्रीवास /5
- कला निकष
  लक्ष्मीकांत जवणे /6
- अमृतस्य नर्मदा
  अमृतलाल वेगड़ /8
- चित्र एवं ग़ज़ल की जुगलबंदी
  श्रीमती मधुप्रसाद /15
- तुलसी के कैनवास पर मूल्यों का पोर्टेट
  डॉ. अमरसिंह वधान/21
- **मधुसूदन साहा के गीत /24**
- **चेतना वर्मा की कविताएँ /26**
- अनूठे सामंजस्य की प्रभावी कविताओं का अभिनव संग्रह...
  पदमा राजेन्द्र/28
- प्रेम गुप्ता: रंगमंच-विश्व में एक रमता जोगी
  सुनील मिश्र /32
- समवेत (सांस्कृतिक समाचार)/**34**

गाय मात्र पशु नहीं, अपितु भारतीय संस्कृति का मूल आधार-स्वामी राम नरेशाचार्य/ राज्य शिखर सम्मान के लिए नामांकन/ अनुशंसाएँ 25 सितम्बर तक आमंत्रित/ डॉ. दया प्रकाश सिन्हा को डॉ. रामकुमार वर्मा सम्मान/ ज्ञान चतुर्वेदी सम्मान : 2017 वरिष्ठ और समर्थ व्यंग्यकार कैलाश मंडलेकर को/ राधेलाल बिजधावने पर एकाग्र, 'राग भोपाली' पत्रिका का लोकार्पण/कला समय पाठक मंच के संयोजक गोपेश वाजपेयी/ हिन्दी दिवस के अवसर पर राष्ट्रीय सम्मान अलंकरण समारोह/ आपके पत्र।

- महिला प्रतिभाएँ वक्र रेखाओं में
  निर्मिश ठाकर/38

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - **शिवम् ग्राफिक्स**, वाट्स्एप नं.-07974917691, **छायाचित्र** - मनीष सराठे, **आवरण चित्र** - विज्ञान व्रत,
रेखांकन - अमृतलाल वेगड़, संदीप राशिनकर, विज्ञान व्रत, **सहयोग** - राहुल, हरीश, धनसिंह, घनश्याम मैथिल 'अमृत'

निर्बंध और प्रबंध

'कला समय' का भोपाल की रंगभूमि पर मंचन दो दशकों से जारी है। भाई विनय उपाध्याय ने इस मंच पर अपनी सशक्त भूमिका से पटकथा को अपने गंतव्य तक शतप्रतिशत पहुंचाया है। नेपथ्य में अपने सूत्रधार की भूमिका से जो न्याय मैं कर पाया, संभवत: बिना विनय के वह संभव नहीं हो पाता।

असल में विनय और मेरी निर्बंध व प्रबंध की जुड़वा भूमिकाएं रहीं। अपनी अपनी भूमिकाओं के दायित्वों का बगैर किसी परस्पर हस्तक्षेप के हम लोगों ने निर्वाह किया, इस तरह कला समय के न पंख भारी हुए न पाँव थके। परिणाम है कला समय की एक पहचान। एक निजी एक विशिष्ट पहचान। इस ठौर तक मेरे साथ सहयात्रा के लिए मैं विनय को साधुवाद देता हूँ एवं उनकी अबाध उत्तरोत्तर यशस्विता के लिए मंगल कामना करता हूँ, साथ ही सार्थक व् सक्रिय सहयोग के लिए आशावान और आश्वस्त हूँ।

कला समय की बदली हुई व्यवस्था में सम्पादक प्रमुख की जिम्मेदारी के लिए अब मेरे पास उपलब्ध भरपूर समय मुझे अनुमति दे रहा है। सजल मालवीय (सम्पादक वस्तुत: कर्मयोगी 'शिवम् पूर्णा') की भाव दृष्टि तथा लक्ष्मीकांत जवणे की नवोन्मेष इच्छा के स्पर्श कला समय को प्राप्त हो रहे हैं। गोपेश वाजपेयी पत्रिका की पहुँच के विस्तार के लिए योजनाबद्ध तरीके से जुटे हैं ।

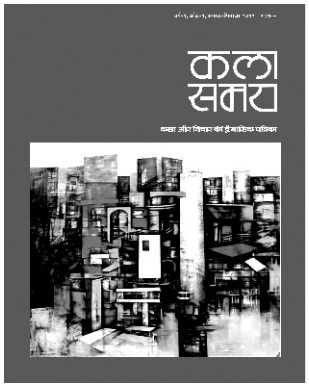

परिवर्तित सांगठनिक व्यवस्था के नेतृत्व में अगस्त-सितम्बर 2017 से अंकों का निकलना शुरू है। प्रतिक्रियाएं तथा प्रयोगात्मक परामर्शों पर मैं चकित हूँ, जिससे कला समय की भूमिका के विस्तार का स्पष्ट दबाव महसूस कर रहा हूँ। पत्रिका में 'कला निकष' स्तम्भ को जोड़ा जाना उसी संभावना के दोहन का एक प्रयास है। 'काल पात्र' के रूप में एक अन्य स्तम्भ विचाराधीन है जिसमें प्राचीन अर्वाचीन कला चिंतन एवं कला कृतियों पर आप सुधीजनों का मनन आमंत्रित है ।

कला और इस समय को देखने की दृष्टि तथा सामग्री आप लोगों के पास है, इसे समाज से अवगत कराने का संकल्प ही हमारी शक्ति है। अपनी सामग्री तथा सुझाव भेजकर इस संकल्प को आशीर्वाद प्रदान करें।

– **भँवरलाल श्रीवास**

निरन्तर....

कला निकष

कला फलक भाव तथा विचारों के युग्म के सहयात्रा का एक आयाम है। इस पर चलने वाला कभी यात्री है, कभी भटका हुआ पथिक, कभी घुमंतू, तो कभी यायावर। यह सैर सपाटा भी है, तो कभी खूब पसीना बहाकर निर्दिष्ट तक पहुँचने का अभियान भी।

ये पदचिन्ह धरती के हर भू भाग से आकाश की दिशा में उठे हैं। मनुष्य की चिरकालिक जिज्ञासा 'अंत तथा अनंत' के भेद को भेदने के प्रयासों का ब्लू प्रिंट है ये पद चिन्ह।

आप लोगों से हुई पिछली बात का सिरा पकड़कर बात को समझे तो पद चिन्हों वाले ये दो पाँव दरअसल 'संवेदनशीलता' तथा 'समावेशिता' हैं।

कलम, कूची, नाद तथा देह को अपने उपकरण बनाने वाले साथियों से विमर्श का नतीजा स्पष्ट करता है कि कला को ताजगी वाली दृष्टि, कलाकार का नए उत्स जैसे गति और वस्तु के द्रुत रूप-परिवर्तन से जुड़ाव में तीव्रता एवं सृजित कला कृतियों पर टिप्पणी या सराहने के लिए विकसित समझ की दरकार है।

संवाद के एक बिंदु को, महान पाब्लो पिकासो के हवाले से कहने की कोशिश करता हूँ। उनके अनुसार कुछ पेंटर होते हैं जो सूर्य को पीले धब्बे के रूप में रूपायित करते हैं और कुछ पेंटर और भी हैं जो पीले धब्बे को सूर्य में रूपांतरित कर देते हैं ।

पिकासो के इस मंतव्य को आज तक खूब मथा गया है, पौर्वात्य तथा पाश्चात्य के कोणों से लेकर भारतीय कसौटी तक पर इस टिप्पणी पर मनन चिंतन हुआ है।

'कला समय' के एक पुर्जे के तौर पर मेरा नजरिया इस तरह इसे समझता है कि दोनों कलाकारों के पास एक सा पीला रंग है, दोनों के पास दस दस सक्रिय अंगुलियाँ तथा नाखून हैं। दोनों पीला रंग अँगुलियों से फैलाते हैं, नाखूनों से लकीरे खींच कर अपनी कृतियों को पूरा करते हैं।

एक के कैनवास पर पीला निशान सिर्फ धब्बा सा लगता है, दूसरे के कैनवास का चिन्ह सूर्य सा मन में उतरता है ।

आग्रह यह है कि दोनों प्रयास सार्थक हैं।

क्योंकि तेज चलती रेल या बस से दोनों ने एक सपाटे के साथ अपनी नज़र से सूरज को ओझल होते हुए देखा। गति के प्रभाव से उस रोशनी पुंज की प्रखरता को एक कलाकार ने धूसरित होते महसूस किया, गति द्वारा दीप्ति को जकड़ते देखा तो उसके लिए सूर्य एक धुरियाया धब्बा है। दूसरे ने दीप्ति को गति से अपराजित माना, क्यों कि ओझलता देह सापेक्ष विभ्रम है, अब इसके लिए अप्रभावित सूर्य अपने आभा तथा आलोक के साथ पूर्ववत है। दोनों कला साधकों की संवेदना अपने इष्टतम स्तर पर हैं। दोनों गति के वेग तथा प्रकाश की द्युति को जी रहे हैं। दोनों का 'कला-काल' मशीनी वेग और शाश्वत प्रकाश के

बदलते अंतर्संबंध की समयावधि ही है।

इस अंक का मुख-पृष्ठ भी दिखा रहा है कि विज्ञान व्रत जी के अंगूठे तर्जनी व मध्यमा के चंगुल में रंग में डूबी तूलिका के साथ-साथ वक्त की नब्ज़ भी है। नगर के आवासों प्रासादों की दीवारें हैं पर झरोखों, गवाक्षों, दरवाजों तथा फाटकों के साथ। तलहट पर टीन की छतें नुमायाँ हैं। हवा और इंसानी आने जाने के दरवाजे कुहासे में छिपे। तलहट में हरा रंग मटमैला तो है पर मन मैला नहीं करता, बाकी चटख रंग उग्रता की हद तक। यह एक साथ बंद और खुले समय का चित्र है।
बंद और खुला समय अर्थात विभ्रम का समय ।

राशिनकर साहब की रेखाओं की वक्रता तथा ऋजुता मोहकता और अर्थवत्ता को समय की दीवार पर म्यूरल की तरह टाँगे हुए है। उनका रेखाओं का कार्य वस्तुत: चित्र को देखने तथा समझने का सादा व्याकरण दर्शक के मन में विकसित करते हुए चलता है।

'कुछ मेरी कुछ तुम्हारी' राशिनकर दंपत्ति (श्रीति व् संदीप) का अपनी अपनी कविताओं को एक ही पुस्तक में रखना बड़ा कोमल एवं मनोहर प्रयास है। बरबस मन्नू भंडारी और राजेन्द्र यादव की याद हो आती है ।

काव्य संग्रह में एक ही रेखांकन दो जगह पर काली तथा सफ़ेद पृष्ठ-भूमियों पर आरेखित है। काली पृष्ठ-भूमि वाला चित्र एक स्तम्भ से दो टुकड़ों में बंटा है और सफ़ेद पृष्ठ-भूमि वाला चित्र, अखंड है साथ ही बाजू में दो स्तम्भ अंकित हैं। पहले का एक अकेला स्तम्भ दरअसल संदीप का रचना धर्मी द्वन्द है पर समूची अविभाजित कृति के पास दो स्तम्भ क्या स्वयं श्रीति और संदीप नहीं हैं? अपने सृजन पर स्पष्ट और दृढ़।

जिन महिलाओं के कारण समय का चलता हुआ होना साफ़ महसूस हुआ, महसूस हो रहा है, वे निर्मिश ठाकर के रेखांकन की विषय-वस्तु हैं। ये रेखांकन, समय पर उनकी छाप तथा विचार लोक के ट्रैफिक सिग्नल्स के प्रति उनके व्यवहार व सोच को सार्थक ढंग से प्रस्तुत करने में पूर्णतया सफल हैं।

सितम्बर हमारी हिन्दी को समर्पित वे 30 दिन हैं, जहाँ हम अपनी भाषायी चेतना, संकल्पों और परियोजनाओं का जायजा लेते है तथा अपने किये अकिये से सफलता एवं सार्थकता में तालमेल बिठाने की कोशिश करते हैं। आप सभी से विनम्र आग्रह है कि हिन्दी के वर्तमान ठौर पर अपनी आप बीती और जग बीती में कला-समय के माध्यम से भागीदारी करें।

इस अंक पर यह सम्पादकीय-बात आपके लिए महज एक चाय की प्याली सी है आपके आलस भाव को उत्कंठा बनाने के लिए क्यों कि भीतर सर्व श्री कुंवर बेचैन, अमृतलाल वेगड़, विज्ञान व्रत (सु श्री मधु प्रसाद के सौजन्य से), चेतना वर्मा, राशिनकर तथा निर्मिश ठाकर की सर्जना आपको व्याकुल तथा विभोर करने के लिए प्रतीक्षारत हैं।

- **लक्ष्मीकांत जवणे**
laxmikantjawney@gmail.com
M- 099936 22228

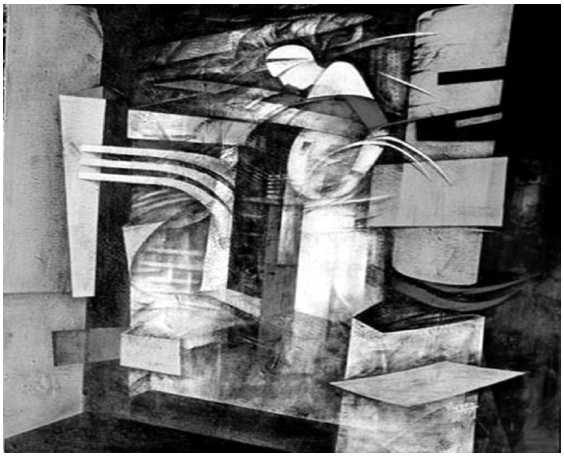

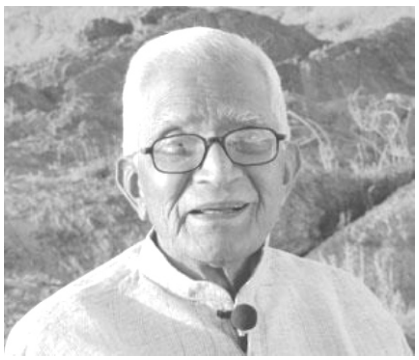

''ये रेखांकन मैंने 1977 से 1987 के दौरान किये थे। 1977 की प्रथम यात्रा के समय मैंने आयु के 50 वें वर्ष में प्रवेश किया था और 1987 की अन्तिम यात्रा के समय 60 वें वर्ष में। अब मैं 68 वें वर्ष में प्रवेश कर चुका हूँ और पहाड़ों और जंगलों की वैसी कठिन पदयात्राएँ करना मेरे लिए सम्भव नहीं। वे दिन पीछे छूट गये हैं और उनके लौटने की कोई उम्मीद नहीं। ये रेखांकन उस अतीत को मेरे लिए फिर से जीवित कर देते हैं। उन उल्लास भरे दिनों को मैं पुनः जी सकता हूँ। ये रेखांकन नर्मदा से मिले अनमोल उपहार है।''

अमृतस्य नर्मदा

अमृतलाल वेगड़ के नर्मदा-तट के रेखांकन

- अमृतलाल वेगड़

नर्मदा! तुम सुन्दर हो, बहुत सुन्दर।
अपने सौन्दर्य का थोड़ा-सा प्रसाद मुझे दो
ताकि मैं उसे दूसरों तक पहुँचा सकूँ।

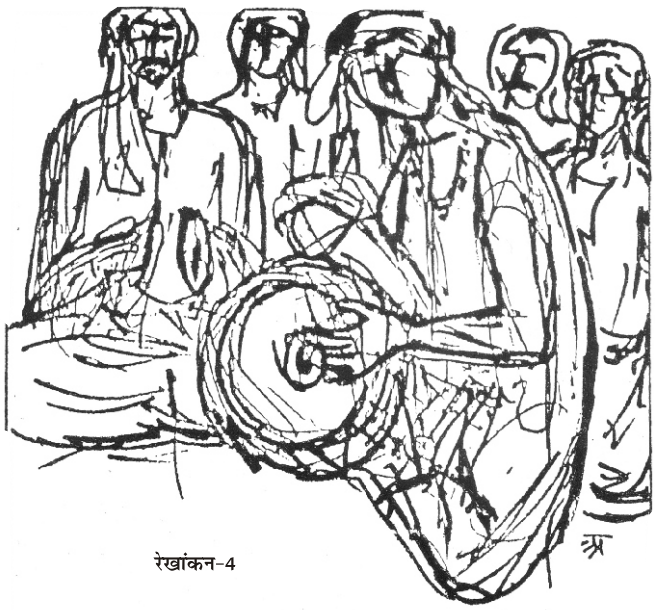

रेखांकन-4

नर्मदा मेरे लिए सौन्दर्य की नदी है। उसका सौन्दर्य मुझे चकित और विस्मित करता है। उसका सौन्दर्य है ही ऐसा। हमेशा नया-नया सा। इस सौन्दर्य की झलक पाने के लिए मैं नर्मदा के किनारे-किनारे 1800 किलोमीटर पैदल चला। एक साथ नहीं, रुक-रुक कर। उद्गम से संगम तक की पूरी यात्रा की। पहाड़ों और वनों में से गया। दुर्गम और खतरनाक शूलपाण झाड़ी में से भी गया जहाँ आज तक शायद ही कोई कलाकार या लेखक गया हो। नर्मदा जहाँ समुद्र से मिलती है वहाँ उसका 20 किलोमीटर चौड़ा पाट नाव से पार किया।

इस देश के करोड़ों निवासियों के लिए नर्मदा केवल नदी नहीं, माँ है। उसके तट पर ऋषियों ने तपस्या की, आश्रम बनाये, तीर्थ बनाये। नर्मदा-तट के छोटे से छोटे तृण और छोटे से छोटे कण न जाने कितने परिव्राजकों, ऋषि-मुनियों और साधु-सन्तों की पदधूलि से पावन हुए होंगे।

बड़ा कलाकार वह है जो मन की आँखों से देख सके। मुझ में यह क्षमता नहीं। पर जब कोई पेड़ या चट्टान मेरी कल्पना को जगाते है, तो थोड़ी देर के लिए ही सही, मैं मन की आँखों से देखने लगता हूँ। तब जो रेखांकन बनते हैं, उनका स्वाद कुछ और होता है।

रेखांकन-17

कभी नर्मदा तट पर शक्तिशाली आदिम जातियाँ निवास करती थीं। आज इसके तट पर बैगा, गोंड, भील आदि जनजातियाँ निवास करती हैं।

यह भारत की सात प्रमुख नदियों में से है। गंगा के बाद नर्मदा का ही महत्व है। नर्मदा अपने आप में अनूठी है। यह अपने ढंग की अकेली नदी है क्योंकि सारे संसार में एकमात्र नर्मदा की ही परिक्रमा की जाती है।

नर्मदा अत्यन्त सुन्दर नदी है। उद्गम से संगम तक की अधिकांश दूरी पूरे लावण्य के साथ तय करती है। यदि नदियों की कोई सौन्दर्य-प्रतियोगिता आयोजित होती, तो सर्वोत्तम पुरस्कार नर्मदा को ही मिलता। नर्मदा के इसी मनोहारी रूप को अपने रेखांकनों में, चित्रों में तथा लेखन में बाँधने का मेरा प्रयास रहा है।

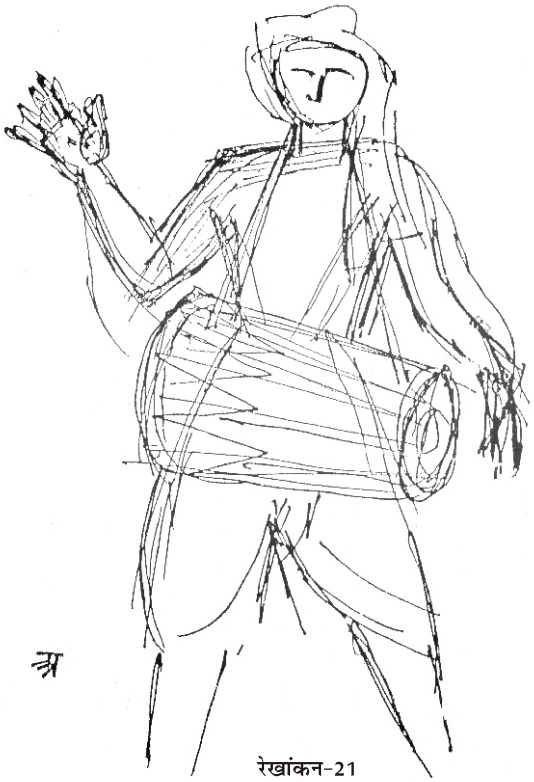

रेखांकन-21

नर्मदा मुझे बचपन से ही खींचती रही है। उसके विविध रूप देखने सुदूर देहातों में गया हूँ। उसकी शोभा को मुग्ध होकर निहारता रहा हूँ। लेकिन तृप्ति कहाँ! परकम्मावासियों को देखकर मन ललक उठता। सोचता, अपनी स्केच-बुक लेकर इनके साथ हो लूँ। लेकिन बात बनती नहीं थी।

किन्तु, एक दिन बात बन ही गयी। 22 अक्टूबर 1977 के दिन जबलपुर से मंडला तक की पैदल यात्रा के लिए हम लोग पीठ पर बोझा लादे चल पड़े। प्राय: 100 किलोमीटर लम्बी इस यात्रा में हमें 15 दिन लगे। दिन ढलते किसी बाबा की कुटी में, कोटवार या पटवारी के घर के बरामदे में, या मन्दिर से लगी धर्मशाला में रह जाते और सबेरा होते ही आगे बढ़ते। कहीं अच्छा लगता तो दो दिन भी रह जाते।

इस पहली यात्रा में मैंने कई रेखांकन (स्केच) किये लेकिन अच्छे चार-पाँच ही हुए। एक गाँव में शरद पूर्णिमा की भजन मण्डली जमी थी। लोग बड़ी मस्ती से गा रहे थे। कोई मृदंग बजा

रहा था, कोई झांझ-मजीरा, कोई पखावज। उनकी मस्ती मुझे भी छू गयी। मेरा हाथ भी उनके लय और ताल के साथ चलने लगा। इस भजन मण्डली (रेखांकन 4) को मैंने आधी रात को चाँदनी में बनाया था।

इसी यात्रा का एक अच्छा रेखांकन साप्ताहिक बाजार में चूड़ियाँ पहनती ग्रामीण नारियों का है(रेखांकन 2) मैंने देखा, गरीब से गरीब ग्रामीण नारी भी चूड़ियाँ खरीदे बिना नहीं रहती। सुहाग और श्रृंगार का काँच की चूड़ियों से बढ़कर सस्ता व सुन्दर आभूषण और है भी क्या!

रेखांकन-2

हमारी दूसरी यात्रा मंडला से अमरकंटक तक की थी और 225 किलोमीटर लम्बी थी। इस यात्रा में हम दो ही थे-मैं और मेरा छात्र यादवेन्द्र। अभी तक हम लोग नर्मदा के उत्तर तट से चल रहे थे, अमरकंटक से दक्षिण तट पर आ गये। अभी तक हम उद्गम की ओर चल रहे थे, अब संगम की ओर चलेंगे। और इस प्रकार, खण्ड यात्रा करते हुए, हम समुद्र तक पहुँच गये। उन परकम्मावासियों की खुशी का क्या कहना, जो कई-कई महीनों की कठिन पदयात्रा के बाद जीवन में पहली बार समुद्र का दर्शन करते हैं। नाव से समुद्र पार कर के हम पुन: उत्तर तट आ गये और भरूच होते हुए नारेश्वर जाकर यात्रा समाप्त की।

पहली यात्रा 1977 में और अन्तिम 1987 में हुई। मैं कुल 1800 किलोमीटर पैदल चला।

इन यात्राओं के दौरान मैंने अनगिनत स्केच किये। दस-पन्द्रह स्केच बनाता, तब एकाध अच्छा होता। बात यह है कि फूल-पत्ती, पेड़-पौधे या मकान का स्केच बनाना आसान है, क्योंकि ये स्थिर हैं, हिलते-डुलते नहीं। लेकिन कार्यरत लोगों के स्केच उतारना काफी कठिन है। इसके लिए लम्बा अभ्यास चाहिए। जिसका आप स्केच बना रहे हैं, वह अपने काम में मशगूल है, उसकी क्रियाएँ लगातार चल रही हैं, इसी में आपको उसका स्केच कर लेना है। यह भी हो सकता है कि स्केच आधा ही बन पाया हो और वह उठकर चल दे। इसलिए आन द स्पॉट स्केच जल्द से जल्द हो जाना चाहिए। स्केच यानी त्वरित आलेखन।

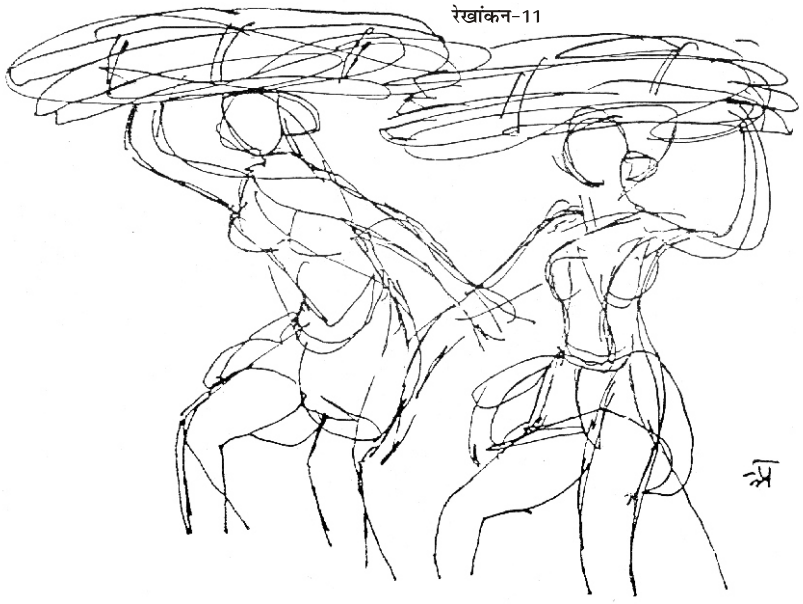

रेखांकन-11

एक प्राचीन गुजराती उक्ति है- बिजली की कौंध में सुई में मोती पिरोना। स्केच करना कुछ-कुछ वैसा ही कार्य है।

गति को, लय या छन्द को छोटे रेखांकन में पकड़ना अपेक्षाकृत आसान होता है। बड़े रेखांकन में गति को पकड़ने में बाधा पहुँचती है। मेरे रेखांकन छोटे ही

हैं प्राय: पोस्टकार्ड साइज के।

बाहर, ऑन-द-स्पॉट स्केच करने में एक दिक्कत यह थी कि तमाशबीनों की भीड़ इकट्ठा हो जाती। मन में खीझ होती कि क्या इनके पास अपना कोई काम नहीं जो यहाँ खड़े हो गये हैं। फिर वे चुपचाप देखते भी तो नहीं, टीका-टिप्पणी करते रहते। ऐसे में काम करना मुश्किल हो जाता। लेकिन मैं जानता था कि मुझे इसी परिस्थिति में काम करना होगा।

नदी में स्नान करती या घाट पर कपड़े बदलती स्त्रियों के स्केच करना सबसे मुश्किल काम था। अपने स्वस्थ-सुघड़ शरीर के कारण कुछेक स्त्रियाँ तो सौन्दर्य की साकार प्रतिमा जान पड़तीं। मैं सोचता क्या ही अच्छा होता अगर मेरी पत्नी स्केच करना जानती होती और इस समय यहाँ होती। इन अनावृत स्नानरता स्त्रियों के स्केच वह मेरे लिए बना देती तो मेरा काम कितना आसान हो जाता। घाट पर वह स्केच करती, उनके आधार पर घर में मैं चित्र बनाता। हम दोनों के बीच घर-घाट का यह बँटवारा, श्रम-विभाजन का यह नया प्रयोग बड़ा लाभदायी सिद्ध होता। लेकिन यह तो सम्भव नहीं था, तब मैं ही उनके स्केच बनाता-चोरी से, लुक-छिपकर! बराबर डर बना रहता कि कहीं कोई मेरी हड्डी-पसली एक न कर दे।

एक बार मैं सचमुच पिटते-पिटते बचा-लेकिन सर्वथा भिन्न कारण से। एक पहाड़ी गाँव में हम दोपहर का भोजन बनाने के लिए रुके थे। मैंने सामने बैठे ग्रामीण का स्केच बनाना शुरू किया। पहले तो वह कुछ समझा नहीं, लेकिन ज्यों ही उसकी समझ में आया कि मैं उसका चित्र बना रहा हूँ तो वह गरज कर बोला, बंद करो! बंद करो यह! मैंने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया, पर जब देखा कि वह गुस्से से काँपता हुआ मेरी ओर आ रहा है और मेरे अंजर-पंजर ढीले करने में देर नहीं करेगा, तो मैंने स्केच करना बन्द कर दिया। बाद में पता चला कि इन लोगों में यह विश्वास है कि अगर कोई उनका चित्र बनाता है, तो उनके शरीर में से उनकी आत्मा निकल जायेगी और वे मर जायेंगे।

एक बार दूसरे प्रकार की मुसीबत में पड़ गया था। सुनसान पहाड़ी रास्ते से जा रहे थे। समझ में नहीं आता था कि सही जा रहे हैं या गलत। मेरे साथी यादवेन्द्र ने कहा, आप पेड़ के नीचे बैठिये, मैं आगे जाकर पता लगाता हूँ। मैं स्केच करने में मगन हो गया। इतने में गम्भीर स्वर सुनाई पड़ा। स्वर तेज होता गया तो मेरा ध्यान गया। मेरे सिर पर मधुमक्खियों का झुंड मंडरा रहा था! मैं सिर पर पैर रखकर भागा। थोड़ी देर और हुई होती, तो वीरगति को प्राप्त न भी होता, पर दुर्गति अवश्य होती। जिस पेड़ के नीचे बैठा था, उसमें मधुमक्खी का खासा बड़ा छत्ता लगा था।

रेखांकन-14

रेखांकन करते समय कई बार, चाहे कुछ क्षणों के लिए ही सही, अपने अस्तित्व को ही भूल जाता।

कई बार मैंने मधुर-सी सिहरन या एक तरह के पावन भय का अनुभव किया है।

अगर कोई स्केच अच्छा बन पड़ता तो मैं खुशी से भर जाता। सोचता, मैं कितना भाग्यशाली हूँ कि मेरे पास अभिव्यक्ति का ऐसा विलक्षण माध्यम है। दृश्यमान जगत को जानने का, उसकी तह में जाने

चिलचिलाती धूप में पहाड़ी मार्ग पर चलते रहने के कारण हम बेहद थके हुए थे। यह एक कारण था। लेकिन दूसरा और बड़ा कारण यह था कि उसके अनुपम सौन्दर्य से मैं इतना अभिभूत था कि मैंने यह पहले ही मान लिया कि इस माधुर्य को कागज पर उतारना मेरे बस की बात नहीं। यह कार्य तो कोई महान कलाकार ही कर सकता है। स्केच बनाने से पहले ही मैंने हार मान ली थी।

का, सशक्त माध्यम है रेखांकन। रेखाओं से मैं उस सौन्दर्य को व्यक्त कर सकता हूँ, जो शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं कर सकता। जहाँ शब्द मौन हो जाते हैं, रेखाएँ बोल उठती हैं।

एक बार एक स्केच का उपयोग मैंने सबूत के रूप में किया। सुनसान पहाड़ी पगडंडी से जा रहे थे। समझ में नहीं आ रहा था कि सही जा रहे हैं या गलत। काफी देर बाद एक ग्रामीण मिला। उसने कहा कि आप ठीक जा रहे हैं। जिस गाँव आप जा रहे हैं, मैं उसी गाँव में रहता हूँ। अभी तो दूसरे गाँव जा रहा हूँ पर आप मेरे घर ही जाइए। मेरा बेटा आपकी पूरी व्यवस्था करेगा। उस ग्रामीण के घर जाकर उसके बेटे को बताया कि रास्ते में तुम्हारे पिता मिले थे, तुम्हारे यहाँ ठहरने के लिए कहा है। तभी मुझे याद आया, उसके पिता का मैंने स्केच कर लिया था, वह दिखाया। वह तुरन्त पहचान गया, खुश हुआ और एक कमरा दे दिया।

ग्रामीणों का पैदल नर्मदा पार करना मेरा प्रिय विषय रहा है। इसके मैंने कई रेखांकन किये। वे पहले माँ नर्मदा को प्रणाम करते, इसके बाद ही नदी में उतरते। मुख्य धारा के आने पर सिर की गठरी ठीक करते, गोद का बच्चा संभालते, काँवर का सन्तुलन ठीक करते और एक-दूसरे का हाथ थाम कर उतरते। पानी गहरा नहीं, लेकिन प्रवाह तेज है और काई के कारण पैर फिसलते हैं। बहुत सम्भाल कर पार करना होता है। कभी-कभी तो ग्रामीण नारियाँ सिर पर लकड़ियों का भारी गट्ठर लिये नदी का तेज प्रवाह पार करतीं (रेखांकन 11)। कैसा रोमांच है इसमें!

यह जो नदी को पैदल पार करना है, यह नर्मदा की अपनी विशिष्टता है। वह शुरू के 100 किलोमीटर तक इतनी उथली है कि ग्रामीण उसे आसानी से पैदल पार कर लेते हैं।

रेखांकन-34

एक बार गर्मियों में चले तो खूब शादियाँ देखने मिलीं। जहाँ शादी होती, वहाँ बड़े-बड़े नगाड़े बजाता वादक होता और पास में छोटी-सी टिमकी बजाता दूसरा वादक होता। दूल्हा-दुल्हन के बजाय इन वादकों ने मुझे ज्यादा आकृष्ट किया। उनका स्केच (रेखांकन 14) बनाते समय मुझे लगा था कि मैं खुद नगाड़े बजा रहा हूँ। कलाकार और कलाकृति के बीच जब इतना तादात्म्य स्थापित होता है तब कलाकृति सजीव हो उठती है।

ऐसा भी हुआ कि मेरे लालच ने मेरे स्केच को बिगाड़ दिया। मुझे लालच हो आता कि स्केच में यह ले लूँ, वह ले लूँ, वह ले लूँ और इसी लोभ में अपने स्केच में बहुत सारा कबाड़ इकट्ठा कर लेता और उसके सौन्दर्य को बिगाड़ देता। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि स्केच में या किसी भी कलाकृति में केवल आवश्यक चीजों को ही दर्शाना चाहिए, अनावश्यक चीजों को

निर्ममतापूर्वक छोड़ देना चाहिए। स्केचिंग का सार यह जानने में है कि क्या लेना चाहिए और क्या छोड़ देना चाहिए। मैं यह जानता हूँ फिर भी ऐसा हो जाता।

इन यात्राओं में मुझे साधु-संन्यासियों के साथ रहने का और उनके स्केच करने का अवसर मिला। एक दुबले-पतले साधु ने एक ही पैर पर खड़े रहने का व्रत लिया था।

ऐसा भी हुआ कि सामने बैठी महिला अत्यन्त सुन्दर थी, लेकिन मेरा स्केच अच्छा नहीं बना। शूलपाण झाड़ी की बात है। नर्मदा परिक्रमा का यह सबसे खतरनाक प्रदेश है। यहाँ के भील परकम्मावासी को लूटकर नंगा कर देते है। मेरे साथ सिपाही थे इसलिए मुझे कोई खतरा नहीं था। गर्मी के दिन थे। झुलसाने वाली धूप में एक गाँव पहुँचे। वहाँ मेरा ध्यान एक स्त्री पर गया। उसे देखा तो बस देखता ही रह गया। रंग तो काला था लेकिन इतना सुन्दर, कोमल-मृदुल रूप में तराशा चेहरा कभी नहीं देखा था। मैंने सोचा, यह है वास्तविक सौन्दर्य जिसे प्रकृति की पूर्णता कहते हैं। वह माँ बनने वाली थी, मातृत्व की उजास उसके चेहरे पर उतर आयी थी। मैंने उसके दो स्केच बनाये पर एक भी अच्छा नहीं बना। उसके सौन्दर्य का शतांश भी मैं अपने स्केच में न ला सका। उस दिन मुझे लगा, आज मेरी स्केचिंग की परीक्षा ली गयी और मैं उसमें अनुत्तीर्ण रहा।

इससे कठिन परीक्षाएँ मैं दे चुका था और सफल रहा था। चक्की पीसती, धान कूटती या दही बिलोती स्त्रियों के रेखांकन मैं बना चुका था। इससे भी कठिन था नृत्यरता आदिवासी नारियों के रात के अन्धेरे में ढिबरी के उजाले में स्केच करना। ये तो मानो हवा में उड़ रही थीं। उनके वलिष्ठ देहलय को अपने स्केच में उतारने में सफल रहा था (रेखांकन 17)। इसकी तुलना में यह तो बहुत आसान काम था। सामने स्थिर बैठी स्त्री का चेहरा भर बनाना था। लेकिन नहीं बना सका।

रेखांकन-12

कभी यत्न करने पर भी कोई स्केच अच्छा न होता, तो कभी अनायास ही अच्छा बन जाता।

कुछ रेखांकन मैंने सर्वथा भिन्न तरीके से बनाये हैं। चलते-चलते जब किसी पेड़ के नीचे सुस्ताने बैठते, या यों ही फुरसत के समय, मैं पेड़ के तने को या किसी चट्टान को गौर से देखता। तने में कहीं-कहीं छाल निकल जाती है और अजीबोगरीब आकार बन जाते हैं। ऐसा ही चट्टानों में या दीवारों पर होता है। इन आकारों को काफी देर तक गौर से देखते रहने के बाद मुझे उनमें कुछ जानी-पहचानी सी आकृतियाँ दिखायी देने लगती हैं। ऐसा हमेशा नहीं होता, कभी-कभी ही होता है, पर जब दिखायी देती हैं तो उन पर से मैं स्केच बना लेता हूँ। मेरे कुछ अच्छे स्केच इसी प्रकार से बने हैं। मेरे लिए यह लुका-छिपी का खेल था। प्रकृति की पाण्डुलिपियों में छिपी सौन्दर्य सम्पदा को ढूँढ़ना कितना दिलचस्प होता था!

एक बार एक पेड़ के तने में मुझे कुएं से पानी निकालती स्त्री दिखायी दी (रेखांकन 34)। कुआँ कच्चा है और रस्सी छोटी है। वह इतना झुक गयी है कि उसकी केवल पीठ ही दिखायी देती है। एक बार एक चट्टान में मुझे मृदंग बजाता वादक नजर आता (रेखांकन 21)। मैंने अपना खुद का जो रेखांकन किया है। (रेखांकन 40) वह भी इसी प्रकार बना है।

इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से बने रेखांकनों में सबसे अच्छा वह है जिसमें नदी पार करता एक ग्रामीण परिवार है(रेखांकन 12)। एक बार

एक किसान के घर में हम दोपहर का भोजन बनाने के लिए रुके थे। मैं बहुत थक गया था, सो गया। उठा तो तेज बुखार लेकर। वही रुक जाना पड़ा। जब बुखार कम हुआ तो मैं पड़ा-पड़ा कमरे की मिट्टी की दीवार को देखने लगा। मिट्टी कहीं-कहीं उधड़ गयी थी और वहाँ तरह-तरह के आकार बन गये थे। सहसा मुझे ऐसा लगा मानो एक ग्रामीण परिवार नर्मदा को पार कर रहा है। आगे पति है, कंधे पर रखे बोझ से झुक-सा गया है। पीछे पत्नी है, उसकी पीठ से बच्चा बँधा है। बढ़िया संयोजन था। मैंने हल्के बुखार में ही यह स्केच कर लिया।

कुछ सामने पेड़ या चट्टान में है, कुछ मन में है, कुछ कल्पना में है। इन तीनों के मिले-जुले रूप है, इस प्रकार के रेखांकन। जहाँ मुझे मृदंगवादक या नदी पार करता परिवार दिखायी दिया, हो सकता है दूसरों को वहाँ कुछ भी दिखायी न दे या कुछ और ही दिखायी दे। दर्शकों के लिए यह अन्दाज लगाना मुश्किल होगा कि इन रेखांकनों को बनाते समय मेरे सामने कोई नहीं था। यह सब कल्पना का खेल था। हाँ, मेरी कल्पना को जगाया उन आकारों ने।

पेड़ों, चट्टानों या दीवारों पर बने आकार मानो ढँका हुआ पकवान है। जो ढक्कन उठा सके, इसे ले ले!

रेखांकन मैंने चाहे जिस तरीके से बनाये हों, सामने देखकर या अस्पष्ट आकारों से प्रेरित होकर, लोग यह नहीं पूछेंगे कि यह रेखांकन तुमने किस प्रकार बनाया। वे तो यही देखेंगे कि वह है कैसा- अच्छा या बुरा।

मैंने दोपहर की चिलचिलाती धूप में भी स्केच किये हैं और आधी रात को चाँदनी में भी किये हैं। एक शिकारी की तरह हर घड़ी मौके की तलाश में रहता है-पता नहीं कब, कहाँ, क्या मिल जाये। समुद्र पार करते समय नाव में भी स्केच बनाये और पहाड़ी पगडंडी पर चलते-चलते भी स्केच बनाये।

ये रेखांकन मैंने माइक्रोटिप्ड पेन से बनाये है। इसलिए कभी-कभी मैं अपने आपको माइक्रोएंजेलो कहता था!

नर्मदा के तटवर्ती प्रदेश का भूगोल तेजी से बदल रहा है। उसकी वन्य एवं पर्वतीय रमणीयता बहुत कम रह गयी है। घने जंगल काट डाले गये हैं। कभी इन जंगलों में जंगली जानवरों की गरज सुनायी देती थी। अब पक्षियों का कलरव तक सुनायी नहीं देता। उन दिनों नर्मदा के तट पर पशु-पक्षियों का राज था, लेकिन उसमें आदमी के लिए भी जगह थी। अब आदमी का राज हो गया है, लेकिन उसमें पशु-पक्षी के लिए कोई जगह नहीं।

बरगी बाँध के कारण नर्मदा तट के कई गाँवों का अस्तित्व नहीं रहा। नर्मदा सागर और सरदार सरोवर के कारण अनेक गाँवों का तथा नर्मदा के सैकड़ों किलोमीटर लम्बे किनारों का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। शूलपाण की पूरी झाड़ी डूब में आ जायेगी। जब मैंने ये यात्राएँ की थी। तब एक भी गाँव डूबा नही था। नर्मदा बहुत-कुछ वैसी ही थी, जैसी हजारों वर्ष पूर्व थी। मुझे इस बात का संतोष रहेगा कि नर्मदा के उस विलुप्त होते सौन्दर्य को मैंने सदा के लिए इन पृष्ठों पर सँजोकर रख दिया है।

नर्मदा के राशि-राशि सौन्दर्य में से मैं थोड़ा-सा सौन्दर्य ही ले सका हूँ। सामने तो अथाह सागर है, पर हम उतना ही तो ले पाते हैं, जितना हमारा पात्र होता है।

नर्मदा! तुम मेरी प्रेरणा-स्रोत हो। तुमने मेरी कला को नया आयाम दिया। मैं तुम्हारे प्रति कृतज्ञ हूँ।

- 1836 राइटटाऊन, जबलपुर-2 (म.प्र.)

साक्षात्कार...

चित्र और ग़ज़ल की जुगल बंदी

अनेकों चित्रकला प्रदर्शनियों में अपनी कलाकारिता की भागीदारी रखने वाले प्रतिष्ठित चित्रकार एवं ग़ज़लकार श्री विज्ञान व्रत से श्रीमती मधु प्रसाद की बातचीत।

प्रस्तोता : श्रीमती मधुप्रसाद

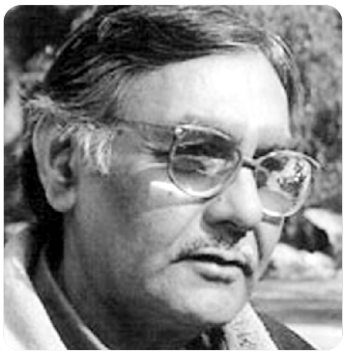

विज्ञान व्रत

श्रीमती मधु प्रसाद

''विज्ञान व्रत अपनी ग़ज़लों के कैनवास पर छोटी-छोटी आकृतियों, छोटे-छोटे बिम्बों, छोटी-छोटी भावनाओं और छोटे-छोटे अहसासों का एक समुच्चय तैयार करते हैं, बिल्कुल अपनी चित्रकृतियों की तरह। जिस तरह इन छोटी-छोटी चीजों से ही हमारी ज़िन्दगी बड़ी बनती है, वैसे ही विज्ञान व्रत की ग़जलें भी।'' श्री अभिरंजन कुमार के इन शब्दों से स्पष्ट है कि अपने आत्मपरक अधिगमन, आध्यात्मपरक दृष्टिकोण एवं निश्चल चेतनाभिव्यक्ति द्वारा श्री विज्ञान व्रत ने अपने मानव चिन्तन को गतिशीलता प्रदान की है। ''मैं जहाँ हूँ'', ''बाहर धूप खड़ी है'', ''जैसे कोई लौटेगा'', ''तब तक हूँ'', ''चुप की आवाज़'', ग़ज़ल संग्रह और ''खिड़की भर आकाश''(दोहा संग्रह) आदि के रचनाकार श्री विज्ञान व्रत का साक्षात्कार श्रीमती मधु प्रसाद द्वारा ''कला समय'' के लिए प्रस्तुत है।

• **मधु प्रसाद जी : दादा, वर्षों से आप साहित्य एवं कला की साधना वंदना में संलिप्त हैं। आप सशक्त ग़ज़लकार, दोहाकार ही नहीं वरन् बालगीत लेखन में भी अपनी पहचान बनाए हुए हैं। लेख, समीक्षाएँ, गीत, नवगीत तथा उपन्यास आदि विधाएँ भी आपकी लेखनी के संस्पर्श से अछूती नहीं है। काव्यपाठ, मीडिया में आपकी उपस्थिति, सुप्रसिद्ध ग़ज़ल**

गायक जगजीत सिंह, धनंजय कौल और निशांत अक्षर द्वारा आपकी ग़ज़लों का गायन एक विशिष्ट उपलब्धि है। आपने अपनी उपस्थिति चित्रकला की दुनिया को भी समृद्ध किया है, यानि एक लम्बी यात्रा तय की है आपने। इस यात्रा के प्रथम और सबसे मोहक पड़ाव यानि बचपन से आज की वार्ता शुरू करना चाहूँगी। वो गुलेल, पानी में कागज की नाव, अमराई से पत्थर मार कर अमिया तोड़ने, नदी में नहाने, माँ की लोरी, पिता की डाँट फटकार प्यार-विज्ञान व्रत की पहली पायदान के कुछ चित्र, यादें, संस्मरण?

– मधुजी! काश मेरा बचपन और बच्चों की तरह गुजरता! पिता जी से डाँट के अलावा शायद ही कभी कुछ और मिला हो, वो हरेक क्षेत्र में सख़्ती से पेश आते थे, चाहे वह पढ़ाई की बात हो, खान-पान का मुआमला हो, पहनने ओढ़ने की बात हो या फिर भाषागत उच्चारण संबंधी विषय।

हाँ, एक-आध बार यानी सिर्फ़ एक-आध बार ही- माँ के प्यार भरे शब्द याद हैं।''लोरी'' जैसे शब्द तो मैंने केवल पुस्तकों में ही पढ़े। मेरी हर गतिविधि पर सख़्त पहरा था- कहाँ खेलना है, क्या खेलना है, कितना खेलना है, किन बच्चों के साथ खेलना है यानी सिर्फ़ दो-चार ख़ानदानों के बच्चों के साथ खेलने और मिलने-जुलने की छूट थी मुझे! 'हर किसी' के साथ खेलने को आज़ाद नहीं था मैं।

मधु जी! वैसे तो, मुझे याद है कि पहली कक्षा से ही मेरा रूझान चित्रकला में हो गया था। मुझे आज भी अच्छी तरह याद है कि जब मैं दूसरी कक्षा में था तो मैंने एक शेर का चित्र बनाया था।

गुलेल, पत्थर मार कर अमिया वग़ैरह तोड़ना यह सब मेरे पिताश्री और माताश्री की नज़रों में अपराध था। चाहता मैं ज़रूर था कि और बच्चों की तरह ये सारे करणीय अकरणीय कार्यों को करूँ लेकिन ऐसा बस सोच ही सकता था। जहाँ तक नदी में नहाने का तअल्लुक़ है तो आस-पास कोई नदी थी ही नहीं, हाँ गाँव में नहर थी उसमें कभी-कभार नहाने का मौक़ा हाथ आया। हाँ, मामा के घर जब जाता था तो नहर में ख़ूब नहाता था।

मैं स्वयम् को भाग्यशाली मानता हूँ कि एक सम्भ्रांत किसान परिवार में पैदा हुआ। परिवार में मेरे चाचा और पिताजी उच्च शिक्षा प्राप्त थे, मेरे चचेरे भाई भी सब डॉक्टर और प्रोफ़ेसर वगैरह रहे। बचपन से ही सब कुछ इफ़रात में देखा-खाना-पीना, दूध-घी, बड़े घेर-घर, हवेलियाँ, गाय-भैंसें, बैल, ऊँट, हमारे तीन कुंए भी थे और तीनों में रहट लगे हुए थे जिनसे हमारे खेतों की सिंचाई होती थी, यानी सब कुछ बहुतायत में और अच्छा-अच्छा! सदा बड़े-बड़े कॉलेजों में, जिन शहरों में चाहा वहाँ पढ़ा।

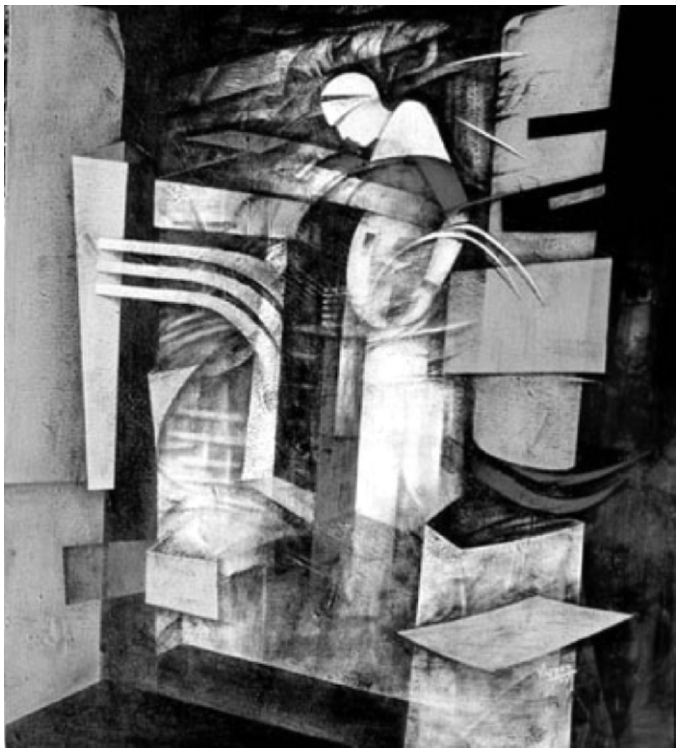

• **मधुप्रसाद जी : जीवन एक ऐसा कोष है जिसमें यादों का अकूत भंडार है। बचपन की गलियों से निकल कर किशोर एवं यौवन की देहरी तक पहुँचने एवं शिक्षा अर्जित करने की दिशा कैसे निर्धारित हुई ? रंगों से, तूलिका से कैसे गठबंधन हुआ ?**

– यादें तो बहुत हैं और जीवन के हर क्षेत्र से जुड़ी हुई हैं। मेरी शिक्षा की शुरुआत मेरठ में बेगमपुल के पास एक स्कूल ''सोफ़िया कॉन्वेंट'' से हुई। मुझे आज भी याद है कि गाँव से क़रीब एक किलोमीटर दूर पक्की सड़क पर मोटर आती थी, जिससे मैं स्कूल जाता था। बहुत धुँधली सी याद है मुझे इस 'पहले' स्कूल की। कुछ समय पश्चात मेरा प्रवेश दौराला मिल के 'सर श्रीराम हायर सैकण्डरी स्कूल' में करा दिया गया और इसी स्कूल में मैं कक्षा एक से कक्षा आठवीं तक पढ़ा। चौथी कक्षा और पाँचवी कक्षा में एक वर्ष में उत्तीर्ण की, क्योंकि चौथी कक्षा की छमाही परीक्षा में दोनों सैक्शनों में मैंने सर्वाधिक अंक प्राप्त किये। उस समय ऐसा नियम था, अब मुझे नहीं पता, है या नहीं। सातवीं कक्षा के बाद हुआ यूँ कि मेरे पैतृक गाँव (जहाँ मेरी खेती-बाड़ी और ज़मीन जायदाद है) में एक हाईस्कूल का निर्माण हुआ। यह घटना 1952-1953 की है, जब गाँव में हाई स्कूल का होना एक बड़ी और ऐतिहासिक घटना थी। हमारे ख़ानदान का इस विद्यालय के निर्माण में विशेष योगदान था। मेरे चाचाश्री स्कूल के manager थे और गाँव के प्रधान भी। मेरे चेचेरे भाई और खानदान के बच्चे इसी स्कूल में पढ़ते थे। गाँव के लोगों ने मेरे पिताजी पर कटाक्ष किया कि जब गाँव में स्कूल है तो फिर खानदान का कोई बच्चा यानी मैं और किसी स्कूल में क्यों पढ़ता है ? इसी के चलते आठवीं कक्षा में मेरा प्रवेश इस नये स्कूल में करा दिया गया। और यहीं से मैंने हाईस्कूल यानी दसवीं कक्षा की परीक्षा पास की।

हाँ, तो दसवीं के बाद मेरा दाख़िला हुआ दिगम्बर जैन कॉलेज बड़ौत में और यहीं आकर मेरी चित्रकला को पंख लगे। कॉलेज में आकर poster colors (रंगों का एक प्रकार) से मेरा परिचय हुआ, और मैं चित्रकला में रमता गया। बारहवीं कक्षा के बाद मैंने बी.ए. में हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी के साथ विशेष रूप से चित्रकला विषय लिया। सौभाग्य से बी.ए. में चित्रकला के गुरू थे श्री रघुवंश कुमार भटनागर थे ! बस उन्हीं के द्वारा मेरा परिचय वास्तविक रूप में चित्रकला संसार से हुआ। आदरणीय भटनागर जी आधुनिक कला के 'आधुनिक' चित्रकार हैं और इन्हीं की प्रेरणा स्वरूप बी.ए. करने के बाद चित्रकला में एम.ए. करने के लिये मैंने देहरादून जाकर डी.ए.वी कॉलेज में प्रवेश ले लिया। खूब जमकर काम किया केवल एक ही धुन थी- चित्रकला और केवल चित्रकला ! एम.ए. प्रथम वर्ष की परीक्षाएं हुईं- चूँकि मुझे 'दुनियादारी'

नहीं आती थी (आज तक नहीं सीख पाया) इसलिये प्रेक्टिकल्स में मुझे विभागाध्यक्ष ने संभवत: सबसे कम नम्बर दिलवाये! मैं भीतर तक टूट गया। मैं आत्म मुग्ध नहीं था अपितु वास्तविक रूप में अपने 'कार्य' का स्तर जानता था। बहरहाल....खून गर्म था और आवेश में अध्यक्ष महोदय की ख़ूब जमकर 'शारीरिक समीक्षा' की। एम.ए.फाइलन करने के लिये आगरा कॉलेज आगरा में जाकर प्रवेश लिया। वहाँ अध्यक्ष थे आदरणीय शुक्ल जी, खूब काम किया, ख़ूब सीखा-रात दिन! लेकिन प्रेक्टिकल परीक्षा तो 'उन्हीं' लोगों के हाथ में थे ना! एम.ए. फाइलन में मुझे विश्वविद्यालय स्तर पर कोई भी पोज़िसन नहीं मिली। मैं जो कॉलेज में प्राध्यापक बनने का सपना पाले बैठा था, ध्वस्त हो गया। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? इसी ऊहापोह में मैंने बी.आर. कॉलेज में इंग्लिश में एम.ए. करने के लिये दाखिला ले लिया और एम.ए. प्रथम वर्ष अच्छे अंकों (लगभग 55 प्रतिशत) से उत्तीर्ण करने के उपरांत मैं दिल्ली आ गया और केन्द्रीय विद्यालय में कला अध्यापक बनकर रह गया।

मधुजी! बचपन से ही मुझे इस बात का स्पष्ट आभास था कि मैं किसी विशिष्ट और रचनात्मक कार्य के लिये बना हूँ। मुझे याद है कि चौथी-पाँचवीं कक्षा से ही मैं नाटकों और वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में भाग लेने लगा था। दौराला शुगर मिल की ओर से आयोजित होने वाले नाटकों और कवि सम्मेलनों को देखने और सुनने में बेहद रूचि लेने लगा था। नवीं क्लास में तुकबंदियाँ करने लगा था और गाँव में सम्राट अशोक पर आधारित एक नाटक भी किया जिसमें अशोक का पार्ट मैंने अदा किया था। घर में क्या पूरे खानदान में किसी की भी रूचि कविता या किसी ललित कला में नहीं थी। इन सारी विसंगतियों के बावजूद मैं आज जो भी हूँ, जैसा हूँ, आप के सामने हूँ।

- **मधुप्रसाद जी : दादा, साहित्य की अनेक विधाओं में आपने ग़ज़ल को विशेष रूप से अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम चुना?**

- जहाँ तक चुनाव का प्रश्न है तो मैंने किसी विधा को नहीं चुना अपितु आत्माभिव्यक्ति के माध्यमों ने मेरा चुनाव किया, मुझे ग़ज़लों ने चुना, दोहों ने चुना और चित्रकला ने चुना।

- **मधुप्रसाद जी : आपने चित्रकला में भी विशेष महारत हासिल की है। आपकी कला कृतियाँ देश-विदेश के संग्रहालयों में सुसज्जित हैं। आपने चित्रकार के रूप में भी अनन्त यश प्राप्त किया है। चित्रकारिता एवं साहित्य का यह संतुलन आपकी अभिव्यक्ति का माध्यम तो है ही उपलब्धि भी है। इतना कुछ इतनी सहजता से कैसे कर लिया? चित्रकारिता के कुछ अनुभव बाँटना चाहेंगे।**

कभी सोचा नहीं, कभी योजनाएँ नहीं की, ठीक वैसे हो जैसे कोई नदी की धारा में बहाव के साथ बस Float करता रहे! दोनों विधाएं अवतरित होती गईं और मैं सहेजता गया कभी काग़ज पर, कभी कैनवास पर!

– जी, मधुजी! यह प्रश्न मुझसे अक्सर पूछा जाता है कि मैं लेखन और चित्रकारी में संतुलन कैसे रख पाता हूँ, तो मेरे लिये यह एक सहज प्रक्रिया है– ठीक वैसे ही जैसे हम खाना खाते–खाते सांस लेते हैं, जैसे मैं अपनी दोनों बेटियों से एक समय में एक–सा प्यार करता हूँ। मैंने कभी महसूस ही नहीं किया कि मैंने दो विधाएं जी रहा हूँ। वास्तव मैं दोनों विधाओं को नहीं साधता हूँ अपितु ये दोनों विधाएं मुझे साधती हैं–संचालित करती हैं। और जहाँ तक यह प्रश्न है कि 'यह सब कैसे कर लिया?' तो मैं बता दूँ कि मैंने कुछ नहीं किया, बस हो गया! कई समीक्षकों ने टिप्पणी करते हुए कहा भी है कि 'विज्ञान व्रत अपनी लेखनी में ब्रश रखता है और उसके ब्रश में शायद क़लम है!'

• **मधुप्रसाद जी : दादा, ग़ज़ल कहन की आपकी अपनी विशिष्ट शैली है। सीधे सरल शब्दों में जीवन की गहरी से गहरी बात आप कह देते है–** **बनेगा वो / मिटेगा जो**

आपका शायर शायद किसी गहरी टीस से जन्मा है। श्री कुबेर दत्त जी कहते हैं। आपके दोहे समसामयिक भी हैं और भावपूर्ण अर्थपूर्ण और प्रेमपरक भी।

दसों दिशाओं में फिरूँ, फैलाए भुजपाश।
प्रेम–क्षितिज को ढूँढ़ता, मेरा मन–आकाश।।

क्या है वह टीस या मलाल या कहीं कोई उपेक्षा या अपेक्षा, कोई खोज या कोई शून्य?

– मधुजी! किसी भी कार्य–विशेष को करते हुए उसे करने का तरीक़ा या शैली स्वयमेव बन जाती है। मेरा ऐसा मानना है कि शैली प्रयत्न करके बनाई नहीं जा सकती बन जाती है। जहाँ तक प्रश्न है किसी 'टीस' का तो ऐसे न जाने कितने ज़ख्म् है, जो अब भी पूरी शिद्दत से टीसते हैं। न जाने कितने दर्द हैं जिन्हें आज भी भूला नहीं हूँ या कहें कि भुला नहीं पाया हूँ। न जाने कितनी उपेक्षा में मैंने जीवन में झेली हैं जिन्हें भूल पाना मेरे बूते के बाहर है! बहुत सारे शून्य हैं जिन्हें मैं अपने रचनाकर्म से भरने की कोशिश करता रहता हूँ। जहाँ तक कुछ खोजने की बात है तो मैं लगातार अपनी खोज में रहता हूँ–ख़ुद को तरह–तरह से तलाश करता रहता हूँ और इसी खोज की शिद्दत और नैरंतर्य का ही प्रतिफलन है, मेरी ग़ज़लें, दोहे और मेरे चित्र! अपने रचनाकर्म में मैं अपने समय को जीता हूँ इसलिये मेरे ग़ज़लें, दोहे तथा चित्र समय–सापेक्ष तो होंगे ही।

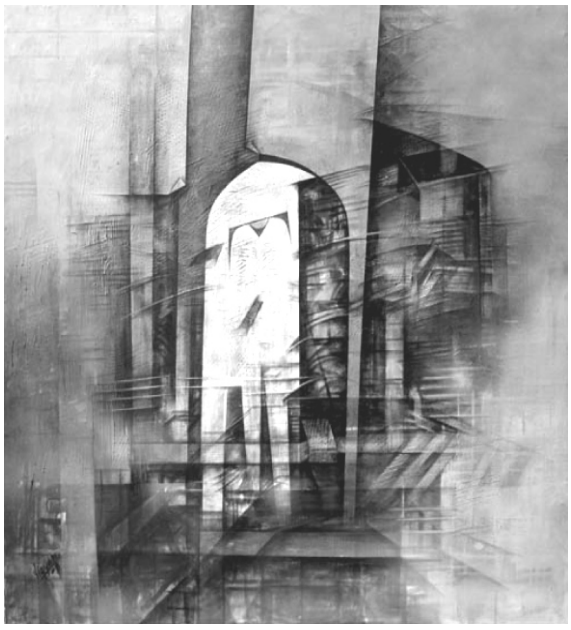

• **मधुप्रसाद जी : एक सफल शिक्षक, लब्ध प्रतिष्ठ चित्रकार, छोटी बहर के बड़े ग़ज़लकार, समृद्ध दोहाकार और गद्य साहित्य में भी अपनी पैठ बनाने वाले, समीक्षक के रूप में सतर्क एवं स्पष्ट, पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन– आपने सभी रोल बखूबी निभाए हैं और निभा रह हैं। क्या है इस अदम्य ऊर्जा, सर्वात्मना समर्पित रचनात्मकता का रहस्य? रंगों से गीतों, ग़ज़लों का नगर निर्माण करने और फिर भी हँसी, सहजता और सतत कर्मशील रहने की प्रवृत्ति का नैरन्तर्य। नई पीढ़ी को आगे बढ़ाने और देश के उत्थान के लिए स्वंय प्रगतिशील बने रहने एवं सार्थक सृजनशीलता को आत्मसात करने के लिए क्या तैयारी करनी चाहिए?**

– देखिये मधुजी! अब तक जो रचनाकर्म हुआ है वह

भगवत् कृपा और माँ-बाप तथा सद्गुरुओं के आशीर्वाद और अपेक्षाओं का परिपाक है। हर समय गतिशील रहने और कार्य करते रहने से ही ऊर्जा प्राप्त होती है। 'चरैवेति-चरैवेति' तो संभवत: 15-16 वर्ष की आयु में सुनने को मिला लेकिन उससे बहुत पहले (उस समय मैं शायद चौथी कक्षा का छात्र था) संस्कृत पढ़ाने वाले शास्त्री जी ने एक श्लोक का अर्थ बताया तो वह श्लोक उसी क्षण कण्ठस्थ हो गया और आज भी है...

''गच्छन् पिपीलिको याति योजनानाम् शतान्यपि।
अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकम् न गच्छति।।''

बस, इसी सूत्र से प्रेरणा और ऊर्जा प्राप्त होती है। इस बात का मैंने कोई वहम नहीं पाला कि मैं एक प्रतिष्ठित चित्रकार हूँ, या सफल ग़ज़लकार हूँ। जब कोई रचना हो जाती है तो उसके होने के आनंद से ही अनवरत कर्म करते रहने की ऊर्जा उद्भूत होती है, जिस प्रकार एक नदी अपने उद्गम से समुद्र में विलीन होने तक सतत प्रवहमान रहती है, ठीक वैसे ही रचना-कर्म में भी नैरन्तर्य एक आवश्यक तत्व है।

आपने तैयारी के बारे में पूछा है तो मेरे विचार से किसी पौधे को अंकुरण से लेकर वृक्ष बनकर फलदार होने तक कोई तैयारी नहीं करनी पड़ती, 'रचना' creativity स्वत:स्फूर्त है, ठीक वैसे ही जैसे एक नदी बहने से पूर्व कोई 'तैयारी' नहीं करती, बस बहने लगती है-बहना उसका धर्म है। creativity या सर्जन एक दैवीय प्रक्रिया है! सर्जन अपने आप में साधन नहीं साध्य है, श्रम से सर्जन को प्राप्त नहीं किया जा सकता। सर्जन किया नहीं जाता, भगवत् कृपा से व्यक्ति विशेष पर अवतरित होता है। **''स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु''**

- **मधुप्रसाद जी :** दादा, आपसे बहुत सारी बातें की। फिर भी लगता है कितनी बातें छूट रही हैं। आपकी ही इन पंक्तियों के साथ आपसे विदा लेती हूँ-

पल भर में क्या समझोगे
मैं सदियों में बिखरा हूँ।

श्रीमती मधु प्रसाद, 29, गोकुल धाम, सोसायटी,
कलोल-महसाणा राजपथ, चाँदखेड़ा, अहमदाबाद
-382424 दूरभाष-095584 24788

विज्ञान व्रत की चार ग़ज़लें

उनसे मेरी यारी है
सबको ये दुश्वारी है

याद तुम्हारी तारी है
लमहा-लमहा भारी है

सुन तेरी खुद्दारी में
मेरी भी खुद्दारी है

सन्नाटा है बस्ती में
जाने क्या तैयारी है

जज है लम्बी छुट्टी पर
और अदालत जारी है

मत पूछो तनहाई की
ख़ुद से हाथा-पाई की

ख़ुद से रोज़ लड़ाई की
ख़ुद ही सुलह-सफ़ाई की

दौलत है रुसवाई की
मैंने ख़ूब कमाई की

बस हिम्मत अफ़ज़ाई की
उसने ख़ूब दवाई की

ख़ाली रस्म-अदाई की
उसने ख़ाक भलाई की

जिसके दम से क़द्दावर था
बतलाए वो किसका सर था

कैसे बात छुपा लेता वो
उसका चेहरा एक ख़बर था

बोल रहा था चुप रहकर भी
उसका ये भी एक हुनर था

बस्ती में क़र्फ्यू के चलते
ख़ुद से भी मिलना दूभर था

बंजारे की मजबूरी थी
उसके सर पर उसका घर था

यूँ वो सबके प्यारे हैं
आशिक़ सिर्फ़ हमारे हैं

ये जो चाँद सितारे हैं
हम जैसे बंजारे हैं

सब तस्वीरों में हमने
उनके अक्स उतारे हैं

हो न सके जो खुद के भी
बेचारे बेचारे हैं

हमने दुश्मन जीत लिए
पर अपनों से हारे हैं

वो जो रखते हैं दम-ख़म
उनके पास किनारे हैं

तुलसी के कैनवास पर मूल्यों का पोर्टेट

– डॉ. अमरसिंह वधान

तुलसीकृत 'रामचरितमानस' में मूल्य दृष्टि एवं 21वी सदी में इसकी आवश्यकता, प्रासंगिकता की परख-पहचान करने से पहले 'मूल्य' शब्द के अर्थ, इसके स्वरूप को समझ लेना संगत होगा। मोटे तौर पर 'मूल्य' मानवीय सद्‌गुणों के वे आधारभूत तत्त्व और आदर्श हैं,, जिनके अनुपालन से ही व्यक्ति एक अच्छा मानव कहलाने का अधिकारी बनता है। जीवन की दिशा, गति एवं सार्थकता मूल्यों पर आधारित है। मूल्य का सीधा संबंध मनुष्य के नैतिक दायित्व और विवेक से भी है। नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर मूल्य मंगलकारी धारणाएँ होती हैं, जो आगे चलकर मनुष्य को संपूर्ण बनाने में मददगार बनती हैं। जीवन की विधिवत् सुरक्षा तथा संतुलित विकास मूल्यों के बिना संभव नहीं है। यह भी कि मूल्य से ही सत्य को समझने, परखने, देखने और आत्मसात करने की शक्ति प्राप्त होती है।

'नहिं असत्य सम पातक पुंजा,
गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा।
सत्यमूल सब सुकृत सुहाए,
बेद पुरान बिदित मनु गाए।'
(अयोध्याकाण्ड)

मनुष्य के सुखद और संतुलित जीवन के लिए सत्य परम मार्गदर्शक एवं परामर्शदाता है।

मनोवैज्ञानिक कोण से देखें तो मूल्य व्यष्टि और समष्टि से जुड़ा हुआ अनुभव है। इसकी रचना में संवेग, भावना और बौद्धिक संवेदन योग देते हैं। निस्संदेह, मूल्य की सत्ता चिरकालिक है। प्राचीन विचारधारा में सत् को चरम मूल्य के रूप में स्वीकारने का संकेत मिलता है। मनुष्य के लिए सत्य उसके चरम ज्ञान में व्यक्त होता है और चरम ज्ञान ही उसके जीवन को सुखी बनाता है। कहना न होगा कि सुख ही मूल्य का आधार है। वैसे मूल्य का सीधा और गहरा संबंध संवेदनात्मक व्यक्तित्व से होता है। यहाँ स्पष्ट कर दें कि मूल्य और मूल्य बोध का पारस्परिक घनिष्ट संबंध है। ये दोनों ही सार्थकता से जुड़े हुए हैं, क्योंकि सार्थकता के अनुभव से ही मूल्य बोध और मूल्य उपजते हैं। एक अन्य विशिष्ट अर्थ में ये दोनों ही आत्मज्ञान के द्योतक हैं।

इसमें दो राय नहीं कि 'मानस' में लगभग सभी वैदिक मूल्यों का समर्थन मिलता है तथा आधुनिक मूल्यों के कई प्रखर संकेत भी मिलते हैं। यह काव्य हमें जीवन जीने और जीवन की ओर उन्मुख रहने की दृष्टि देता है। यह विराट काव्य कृति व्यष्टि और समष्टि के प्रति पावन मंगलमयी भाव राशि का अगाध सागर है, जिसके आलोक में मनुष्य का सुसंस्कृत और परिष्कृत रूप झिलमिलाता है। आश्चर्य नहीं कि

'मानस' में तुलसी ने इतने उत्तम और इतने अधिक सांस्कृतिक एवं नैतिक तत्त्व प्रभावशाली ढंग से उकेरे हैं, जितने शायद हिन्दी वाङ्मय के शेष समस्त कवि सामूहिक रूप से भी न दे सके होंगे। इस ग्रंथ में ऋतु एक ऐसा अनुल्लंघनीय नैतिक नियम है, जो सृष्टि की सारी व्यवस्थाओं का नियामक है। इससे हमें सुन्दर सत्कर्मों में लगे रहने की प्रेरणा मिलती है तथा नैतिक व्यवस्थाओं का दृढ़तापूर्वक अनुपालन करने का संकेत भी मिलता है।

यह भी ज्वलंत सत्य है कि उदात्त नैतिक मूल्यों के अनुपालन से एक उत्कृष्ट समाज की स्थापना की जा सकती है। लोग समाज में आपसी सौहार्द्र, प्रेम, शांति और सौमनस्य रखते हुए प्रसन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत कर सकते हैं। तुलसी की कामना है कि सभी लोगों के मन सबके कल्याण में एक समान हों और ईश्वर स्मरण तथा शुभ गुणों के प्रति उनका चिंतन भी समाज हो। एकता एवं समन्वय से आदर्श समाज की स्थापना की जा सकती है। बिना शक, तुलसी का 'मानस' उदात्त नैतिक मूल्यों का समुच्चय है। राम में हमें एक संवेदनशील एवं नीति प्राण मानव की पराकाष्ठा परिलक्षित होती है। उनका समग्र जीवन एक आदर्श है। वे मन, वचन और कर्म से नैतिक हैं तथा सामाजिक और मानवीय मूल्यों के प्रति आस्थावान हैं-

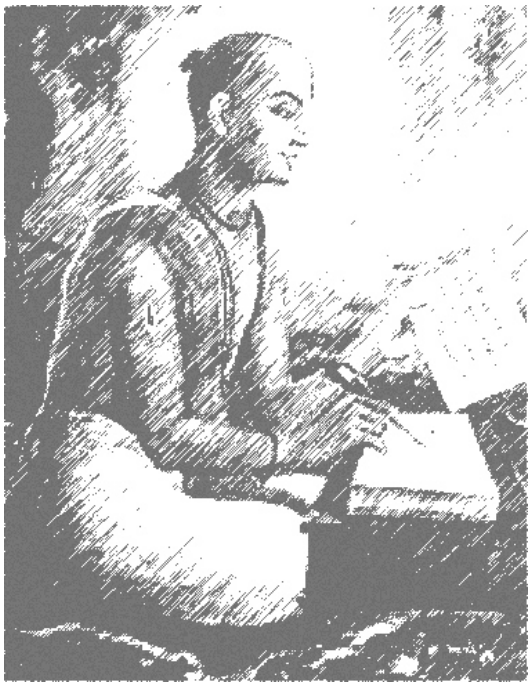

'राम राज बैठे त्रैलोका,
हरषित भए गए सब सोका।
बयरू न कर कोहू सन कोई,
राम प्रताप विषमता खोई।'(उत्तरकाण्ड)

'मानस' में बार-बार मनुष्य को प्राणिमात्र के प्रति निष्कपट, निश्छल प्रेम भाव रखने की बात कही गई है। उनके राम प्राणिमात्र के प्रति समत्व भाव के पोषक हैं तथा समग्र संसार को आत्मवत् देखते हैं। 'मानस' में शांति, सुस्थिरता और प्राकृतिक अनुकूलन की कामना की गई है। तुलसी ने सरलता, मित्रता, सत्यता, परोपकार, दया, मृदु वचन एवं नैतिकता को सर्वाधिक महत्व दिया है। मनुष्यमात्र को पीड़ा पहुँचाना 'मानस' की दृष्टि से पाप है, लेकिन परोपकार के समान कोई पुण्य नहीं-

'सीतलता सरलता मयत्री,
द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री।
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं,
परुष वचन कबहूँ नहिं बोलहिं।
परहित सरिस धर्म नहिं भाई,
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।'
(उत्तरकाण्ड)

कहने की ज़रूरत नहीं कि तुलसी के राम मर्यादित पुरुष हैं। वे स्वयं नैतिक नियमों का पालन करने के लिए संकल्पबद्ध और स्वानुशासित हैं। उनकी कथनी-करनी में कोई भेद नहीं है। मानसकार ने अपनी कृति में 'दान' का भी कई स्थानों पर समर्थन किया है। उनकी दृष्टि में याचक के अभाव को दूर करना ही मानवीय सदाशयता एवं नैतिकता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। वे बार-बार रामराज्य की जनता को धर्म मार्ग में चलने वाली धर्म परायण बताते हैं। उनके रामराज्य में 'धर्म' सत्य, शुचिता, दया और दान में खड़ा है। आपसी प्रेमपूर्वक व्यवहार से समाज में दु:ख, द्वेष और अशांति की कल्पना नहीं की जा सकती। राजा को एक आदर्श समाज में साम, दाम, दंड, भेद इन उपायों के प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं पड़ती-

'दैहिक दैविक भौतिक तापा,
राम राज नहिं काहुहिं व्यापा।
सब नर करहिं परस्पर प्रीति,
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति।'(उत्तरकाण्ड)

उल्लेखनीय है कि जीवन के जितने भी नैतिक

आदर्श हैं, उनका आधार सत्य है। सत्य में ही वास्तविकता की ओर अच्छे भले, सबके कल्याण की भावना निहित है। सत्य को सबसे बड़ा धर्म माना गया है। 'शतपथ ब्राह्मण' में कहा गया है, 'जो धर्म है, निश्चित ही वह सत्य है।' 'ऋग्वेद' में भी कई स्थानों पर सत्य का महत्व प्रतिपादित किया गया है। दरअसल, सत्य किसी अन्य को कष्ट पहुँचाने से तथा स्वार्थ हेतु मनुष्य को झूठ में प्रवृत्त होने से बचाता है। 'मानस' में नैतिक मूल्यों के अंतर्गत सत्य को सर्वोच्च स्थान मिला है-

'नहिं असत्य सम पातक पुंजा,
गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा।
सत्यमूल सब सुकृत सुहाए,
बेद पुरान बिदित मनु गाए।'(अयोध्याकाण्ड)

मनुष्य के सुखद और संतुलित जीवन के लिए सत्य परम मार्गदर्शक एवं परामर्शदाता है। जिस प्रकार एक मंत्री अपने परामर्श से राजा को उचित-अनुचित का विवेक देता है, उसी प्रकार सत्य व्यक्ति को सन्मार्ग की ओर लगाता है। इसीलिए तुलसी 'सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी' कहकर सत्य को मनुष्य का मंत्री की उपमा देते हैं। वे सत्य की रक्षा हेतु दशरथ के प्राण त्याग को भी उचित ठहराते हैं। भारद्वाज भी दशरथ को सत्य रक्षा के प्रति तत्पर जानकर उनकी प्रशंसा करते हैं। तुलसी भी राम को स्वाभाविक रूप से सत्यवादी बताते हुए उनकी सराहना करते हैं-

'राम सत्य व्रत धरम रत,
सब कर सीलू सनेहु।'(अयोध्याकाण्ड)

दार्शनिक दृष्टि से देखा जाए तो किसी भी उत्कृष्ट कृति में दो प्रकार के मूल्य पाए जाते हैं-सामयिक और शाश्वत। सामयिक मूल्य अपने समय की अपेक्षाओं की प्रतिपूर्ति करते हैं और शाश्वत मूल्य जीवन के चिरंतन तत्त्वों से सामुज्य होने के कारण समय और परिवेश के परिवर्तित हो जाने पर भी अपनी महत्ता बनाए रखते हैं। 'मानस' में प्रतिपादित नैतिक मूल्य अपने युग में भी प्रतिष्ठित एवं प्रासंगिक थे और इस नई सदी में भी उनका महत्व अक्षुण्ण है। कारण यह कि तुलसी ने अपने युग की अपेक्षाओं को पूरा करते हुए युग धर्म का निर्वाह उत्कृष्टता से तो किया ही है, साथ ही अपनी शाश्वत चेतना और चिरंतन जीवन मूल्यों द्वारा सनातन प्रश्नों के तर्कसंगत उत्तर भी खोजे हैं। 'मानस' में न्याय, आत्मसंयम, त्याग, तपस्या, सत्य, प्रेम, परोपकार, नैतिकता का संरक्षण, शांति और सह-अस्तित्व के वृहत्तर जीवन मूल्यों को समर्थन प्राप्त है। तुलसी की मूल्यपरक स्थापनाएँ शाश्वत होने के कारण उन्हें आधुनिक युग से जोड़ती हैं, उनकी उपादेयता स्थापित करती हैं।

नैतिक मूल्य शाश्वत जीवन मूल्य हैं। लेकिन 21 वीं सदी के इस भौतिकवादी सामाजिक माहौल में इनके विलुप्त होने का संकट गहरा रहा है। सत्य पर असत्य, शांति पर अशांति, अहिंसा पर हिंसा, अनुशासन पर अनुशासनहीनता, नैतिकता पर अनैतिकता, समानता पर असमानता, आध्यात्मिकता पर भौतिकता, प्रेम पर घृणा और परहित पर निजहित की काली पर्त जमती जा रही है। रिश्तों में कृत्रिमता, चरित्रहीनता, अन्तर्वैयक्तिक संबंधों का विघटन, असुरक्षा, धनलोलुपता, ईर्ष्या-द्वेष आदि कुतत्त्वों का समाज में संचारण और प्रसारण बढ़ता जा रहा है। आज सबसे बड़ी चुनौती अधुनातन संचार माध्यमों से है। वैश्विक स्तर की सूचनाओं और घटनाओं का ढेर लगाकर इन माध्यमों ने अपसंस्कृति के संक्रमण का ख़तरा भी उत्पन्न कर दिया है। इनके ज़रिए घोर अश्लीलता और वासनापरक मानसिकता का प्रवेश घर-आंगनों में निर्बाध रूप से हो चला है। भौतिक उन्नति और धनोपार्जन वृत्तियों ने मनुष्य को अधिक लालची, स्वार्थी, असंतुष्ट, अधीर, असहिष्णु और हिंसात्मक बना दिया है। उपभोक्ता संस्कृति के प्रभावाधीन तनाव अधिक बढ़ा है। मनुष्य दिशाहीन मार्ग में दौड़ रहा है। ऐसी स्थिति में 'मानस' हमारी श्रेष्ठ पथ-प्रदर्शिका बन सकती है।

एक अन्य चुभने वाली बात यह है कि अपने युग की सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक आवश्यकताओं की जैसी पहचान तुलसी ने की थी, वैसी पहचान न तो उसके समकालीन एवं समानधर्मी कर पाए और ना ही 21वीं सदी के रचनाकार कर पा रहे हैं। इससे भी महत्वपूर्ण यह तथ्य है कि तुलसी का चिंतन सार्वभौमिकता, सर्वकालिकता और शाश्वत सत्य से जुड़ा था। विश्वास किया जाना चाहिए कि 'मानस' के उदात्त नैतिक मूल्य वर्तमान मानव एवं समाज की कुंठा, संत्रास, संदेह, विद्वेष, दुविधा, हिंसा, आतंक एवं असंतोष के उन्मूलन में सहायक सिद्ध होंगे।

निदेशक, उच्चतर शिक्षा एवं शोध केन्द्र 3150-सेक्टर-24 डी, चण्डीगढ़-160023 ■

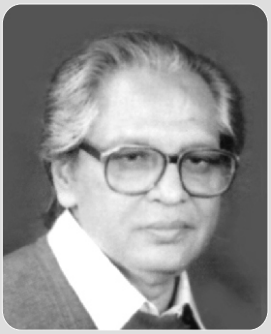

मधुसूदन साहा के गीत....

आत्मकथ्य : नयापन गीत के कथ्य और शिल्प दोनों में हो सकता है। इसलिए समकालीन भाव-प्रवृत्तियों को सम्प्रेषित करने वाले कथ्य और नये-नये शब्दों, मुहावरों, छन्दों, प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से मानवीय संवेदनाओं की गेय प्रस्तुति ही नवगीत है। इसमें भावों की भव्यता और 'कहन' की नव्यता दोनों का समायोजित स्वरूप दृष्टिगत होता है। वस्तुतः नवगीत वर्तमान भारतीय अस्मिता और सांस्कृतिक विरासत की अद्यतन समझ है।

1. चंदनवन सूना लगता है

जिस दिन होती
बात नहीं गीतों से मेरी,
उस दिन मन का
चंदनवन सूना लगता है।

मैंने जीवन भर
खुशबू से बातें की हैं
हर दरवाजे को
सुन्दर सौगातें दी हैं
जिन पलकों में हो
मावस की मूक उदासी
उन पलकों को भी
पूनम की रातें दी हैं
जिस दिन कोई
कंठ रहे पानी बिन प्यासा
उस दिन सारा
सावन-घन सूना लगता है।

उम्र कटी मेरी
जग को समझाने में ही
लगे हुए सब हैं
सबको उलझाने में ही
सब्जबाग मैंने
दिखलाया नहीं किसी को
वक्ता सदा बीता
खूद को सुलझाने में ही
जिस दिन वंशी
बजी नहीं मेरे कानो में
उस दिन अंतस
का मधुवन सूना लगता है।

जो भी मुझे मिला
औरों को दान दिया है
सुख-दुख दोनों का
जीभर सम्मान किया है
जिसने हाथ झटककर
छोड़ा साथ हमारा
उसके तम को भी
अपना दिनमान दिया है
जिस दिन रिश्ता
किसी वजह से होता घायल,
उस दिन मेरा
घर-आंगन सूना लगता है।

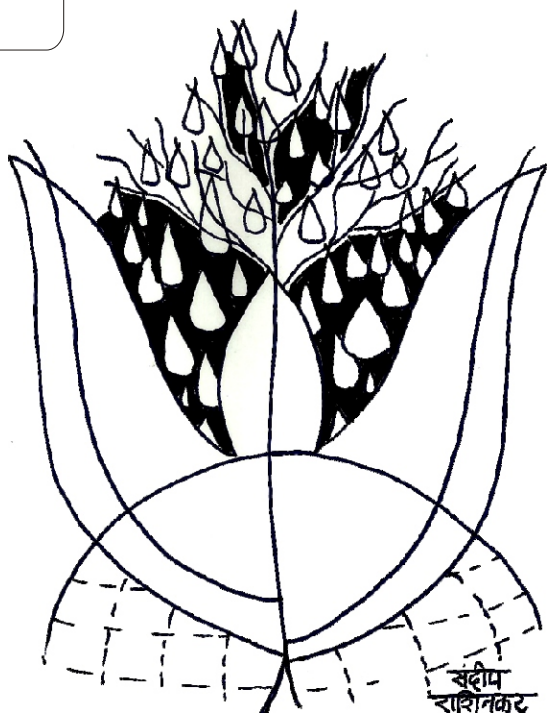

मान-मनौव्वलकर
बगिया में फूल खिलाये
क्यारी-क्यारी को
अपने हाथों नहलाये
कांटों के चुभने से
पहले पंखुरियों को
स्नेहिल हाथों से
सब दिन मैंने सहलाये
जिस दिन मन में
उठे नहीं कोई हित चिंतन
उस दिन सारा
आयोजन सूना लगता है।

2.नींद नहीं आँखों में आई

जिस दिन माँ ने
बेटी को साड़ी पहनाई,
उस दिन से ही
नींद नहीं आँखों में आई।

मोड़-मोड़ पर
नागफनी ने फन फैलाये,
गली-गली से
खतरों के संदेशे आये,

जिस दिन घर को
लगी घूरने नज़र पराई
उस दिन से ही
नींद नहीं आँखों में आई।

परदे लगने
लगे अचानक ज़्यादा झीने,
सदियों जैसे
मुझको लगने लगे महीने

जिस दिन दरपन
देख स्वयं बेटी शरमाई,
उस दिन से ही
नींद नहीं आँखों में आई।

ऐसी-वैसी
खबरें छपतीं रोज़ आजकल,
आशंकाएं
खड़का जाती मन की साँकल,

जिस दिन बिटिया
देख किसी को खुद मुसकाई,
उस दिन से ही
नींद नहीं आँखों में आई।

डॉ. मधुसूदन साहा का परिचय
जन्म : 15 जुलाई, 1940
जन्मस्थान : ग्राम धमसाई, गोड्डा (झार.)
शिक्षा : एम.ए.(हिन्दी), पी.एच.डी. (डी. लिट)
प्रकाशित कृतियाँ : 'पलकों की पंखुरी', 'महुआ-महावर', 'तप रहे कचनार', 'शब्दों की पीड़ा', 'सपने शैवाल के', शीर्ष पाँच गीत संग्रहों के अतिरिक्त एक मुक्तक संग्रह, दो कहानी संग्रह, दो उपन्यास, एक राजभाषा, एक शोधग्रन्थ, पाँच बालगीत संग्रह, आठ अनूदित और दस सम्पादित ग्रन्थ।
सम्पर्क - सौरभ सदन, डी-90, कोयल नगर, राउरकेला-769014 (ओड़िशा)
मो.- 098615 64729

रोज़ तकादा
करता आकर वक्त-महाजन,
सोच-सोचकर
सूख रहा है मन का सावन,

जिस दिन घर के
पिछवाड़े गूँजी शहनाई,
उस दिन से ही
नींद नहीं आँखों में आई।

3. किसे पुकारें ?

जितने फन, उतनी फुफकारें,
इस संकट में किसे पुकारें ?

सभी यहाँ हैं
ज़हर उगलते,
बात-बात में
रोज़ उबलते,
जितने सिर, उतनी तलवारें,
इस संकट में किसे पुकारें ?

कौन यहाँ है
खेवनहारा,
कौन लगाये
किसे किनारा,
टूट गईं सबकी पतवारें,
इस संकट में किसे पुकारें,

सभी खून में
सने हुए हैं,
बिना वजह ही
तने हुए हैं,
गूँज रहीं सब की ललकारें,
इस संकट में किसे पुकारें ?

चेतना वर्मा की कविताएँ....

आत्मकथ्य : मेरी समझ है कि कोई कुम्हार सूखी मिट्टी से बर्तन नहीं बनाता। मिट्टी को गीली करता है, फिर बर्तन को आकार देता है। सामान्य सी बात है कि रात अंधेरा पीकर ही सुबह का उजास देती है। किसी भी सुख, किसी भी खुशी के मूल में पीड़ा होती है। प्रसव वेदना के बाद ही बच्चे की खिल-खिलाहट सुनाई पड़ती है। दुख आज तक निषेधात्मक ही माना जाता रहा। उसकी अपरिहार्यता पर ध्यान नहीं जाता। मैं दुख को रचनात्मक मानती हूँ।

1. रंग भरती हवा

ओस की बूँदों से सजी
गेहूँ की नुकीली पत्तियाँ
जब शीत ऋतु के गीत
गा रही होती हैं
सूरज की बाँह थामे
सपनों में रंग भर रही होती है हवा
तब बजती है
किसी किसान के द्वार पर
ढोल और शहनाई
सिन्दूर से छापी जाती हैं
देहरी पर हथेलियाँ
और भीतर दीवार पर
सीता-राम का स्वयंवर
दूब खुश होती है कि जहाँ चाहे
उठा सकती है अपना सिर
आ रहा है वैसा समय
जब नदी जान लेगी सब कुछ
पानी के बारे में
मगर सच तो यह है कि
रोज नहाने वाली चिड़िया
कितना जानती है पोखर को
या रोज जो सुलगाती है आग
और पानी के छींटे मार-मार कर
बुझाती है रोटी बन जाने पर
क्या सोचती है आग के बारे में
माँ और उसकी माँ
और उसकी भी माँ
कितना जानती थी
आग के बारे में।

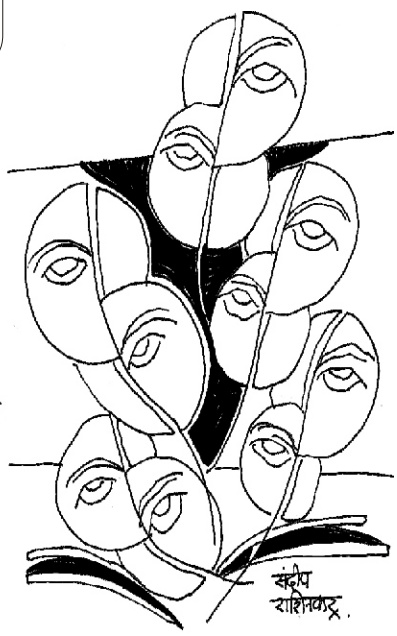

2. गीली मिट्टी है दुख

तुम घबड़ाना नहीं
न दुखी होना बेटी
कि तुम्हारे बचपन को नहीं मिला पिता का कंधा
नहीं जा सकी तुम आम-अमरूद के बागों में
झूलती हुई उनकी बाँहों में
नहीं सिखाया उन्होंने तुमको
कौआ और कबूतर की पहचान करना
उनकी उंगली पकड़कर तुमने रास्ता चलना भी
नहीं सीखा
बचपन ने ही सिखाया तुमको
कि सयानी कैसे हो जाती हैं बेटियाँ
असमय
जब तुम नहीं जानती थी कि कितना धारदार होता है
समय
बेटी तुमने न जाने कितने जंगल पार किये
समय के
दुलार करती तुम्हारी माँ जब तुम्हारी बला लेती
हवा में हिलते पीपल के पत्तों की लय पर
नाचती थीं तुम्हारी आँखें
तुमने जान लिया था उन्हीं दिनों
कि तुम्हारे सारे दुख थे
गीली मिट्टी की तरह
जिससे बनाये थे तुमने कितने ही खिलौने
गाने और नाचनेवाली पुतलियाँ
उनके लिये जिनके सिर पर पिता नहीं छाये रहे
छत की तरह
जिनको नहीं मिली पिता की बाँहों की दीवारें
जो बचा सके उनको कितने ही झंझावातों से
बेटी सचमुच गीली मिट्टी है दुख
कंदीलों की तरह जलेंगे वे तुम्हारी राहों में
यहाँ से वहाँ तक

3. छोटी-छोटी खुशियाँ

चूड़ियों भरे हाथ जब खनकते हैं
तो भरते हैं स्वाद रोटियों में
ओर लोरियों में भरती है
लय
इनसे आगे आते हैं कई-कई हाथ
जो उठाते हैं हल और कुदाल
तोड़ते हैं बंजर
उगाते हैं अन्न
भरते हैं पेट और पलती है मनुष्यता
बिना इसके नहीं आते हैं स्वाद
नहीं आती है लय
न उठते हैं कुदाल और हल
न टूटते बंजर, न उगते हैं अन्न
और खाली हो पेट तो पलती नहीं
खुरदुरे हाथों में
मनुष्यता
पलती है कोमलता
उगती है फसल
सारे प्रेमगीतों की
इन हाथों में ही लहराती हैं
छोटी-छोटी खुशियाँ
जिनकी सुगंध फैलती रहती हैं
गाँव-शहर, जंगल-
पहाड़ों तक।

चेतना वर्मा का परिचय
शिक्षा : एम.ए. (आधुनिक इतिहास), पी.एच.डी., नेट, रिसर्च एसोसिएट (यू.जी.सी.)
कृतियाँ : 'सप्त स्वर'(सह कविता संग्रह)2002, 'उस दिन का इंतजार' 2007, 'गीली मिट्टी है दुख' 2014, 'फूल गाछ की तरह' (प्रकाश्य कविता संग्रह)
विशेष : कविता, संगीत और लोक कलाओं में विशेष अभिरुचि।
सम्पर्क : 2, कैजर बंगला, कपाली रोड, कदमा (कदमा-सोनारी लिंक), जमशेदपुर-831005 (झारखंड)
मो.-082926 75554

4. धूप की ओढ़नी

पहाड़ पर जाड़े की सुबह सी
गुलाबी बादलों में कूची डुबोकर
लिखी गई घाटी की आँखें
पेड़ों पर पंख हिलाती चिड़िया
चलना सीख रहे बच्चे सी हवा
शीशे के ग्लास भर पानी में तैरती गुलाब की
चम्पई पंखुड़ियों से जाती आलस भरी महक
जैसे घूंघट काढ़े कोई साँवली लड़की
बुहार रही हो घर-आंगन
जैसे खेल में हारती हुई कोई बच्ची
खेलती जा रही हो जीतने की लालसा में
जैसे पहली बार ऊगा हो अंतर में प्रेम
पड़ोस में आये लड़के में
वय:संधि पर जिसका रंग और भी
गेहुँआ गया हो
सच कहूँ हरियाये खेत के मोड़ पर
लगे ठहाके से झक ऊग आया हो दिन जैसे
मेरे सामने खड़ी हो तुम
मैं जैसे रोते-रोते थक गये बच्चे सा
खिलखिलाकर हँसने लगा हूँ
मेरी हर खिलखिलाहट पर
क्या बुनती जा रही हो तुम
धूप की ओढ़नी फेंककर जब जाती हो
ऊग आता है एक उत्सव दिन

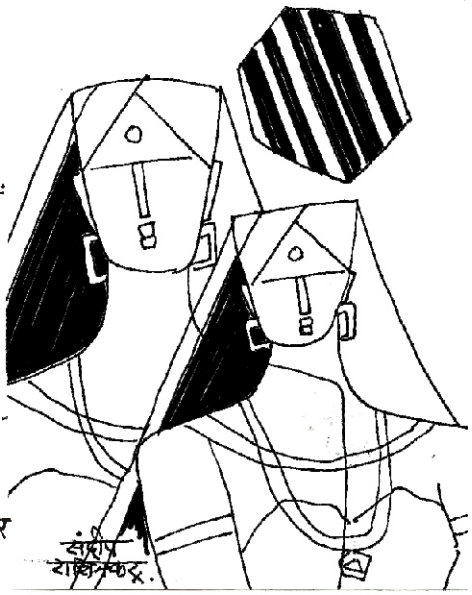

5. अपने से बाहर

कुछ ऐसा हुआ है
नदी से अलग ही दीख रहा है पानी
अपने में मगन किनारों की नहीं सुनता
इस अनमनेपन को जान गयी है चिड़िया-
तभी वह पानी पर नहीं, किनारे पर नहीं
पटेरों के बोझ पर बैठी है
कुछ धूप से कहती है, कुछ हवा से
पानी सबकुछ सुनकर भी कुछ नहीं सुनता
नदी के साथ रहकर भी वह नदी का नहीं है
जिन्दगी भर तो रहा किनारों के बीच
अब होना चाहता है बाहर
सुनने लगा है वह अपने भीतर
पनपती निर्बंध हलचलों को
यह हलचल भर देगी उसको
नदी से बाहर होने की
जिद से।

समीक्षा...

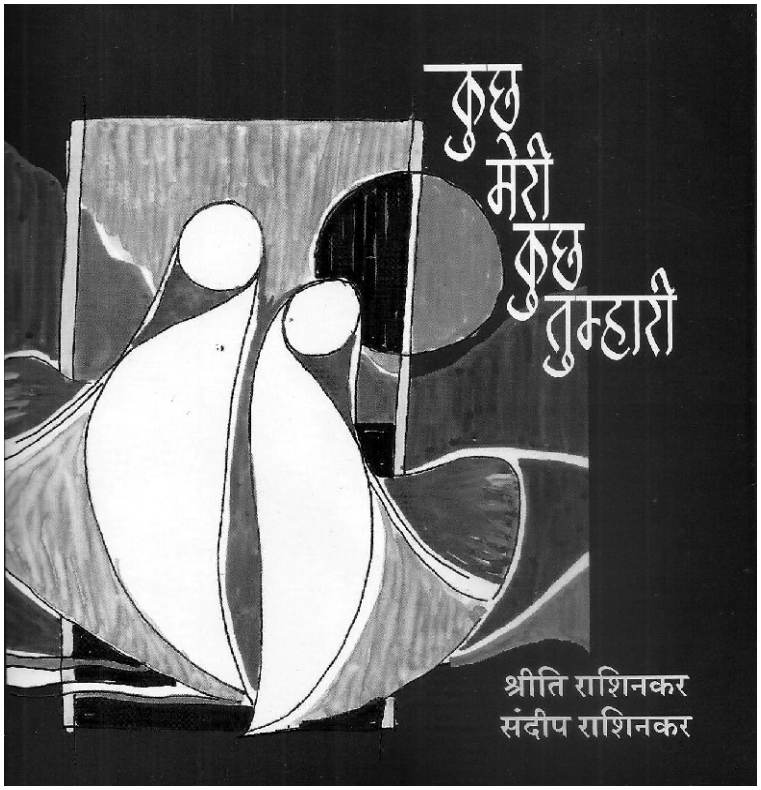

अनूठे सामंजस्य की प्रभावी कविताओं का अभिनव संग्रह

- पदमा राजेन्द्र

अनोखा व खूबसूरत नाम लिए एक संग्रह आया है 'कुछ मेरी कुछ तुम्हारी'। हालांकि कई कविताएँ मेरी तुम्हारी न होकर हमारी हो गई है, बिना किसी प्रयास के और यही इस काव्य संग्रह की सबसे बड़ी खूबी बन गई है। पति-पत्नी दोनों एक ही रुचि, एक ही विधा में पारंगत हो ऐसा संयोग यदा-कदा ही होता है। प्रसिद्ध लेखक दम्पत्ति मन्नू भंडारी-राजेन्द्र यादव का एक उपन्यास 'डेढ़ इंच मुस्कान' के बाद कविता के क्षेत्र में श्रीति व संदीप संभवत: पहले ऐसे दम्पत्ति है जो संयुक्त रूप से अपना संग्रह पाठकों को सौंप रहे है। निश्चित ही यह पहल बधाई योग्य है।

श्रीति व संदीप की 'कुछ मेरी कुछ तुम्हारी' काव्यकृति हाल ही में ग्रेटर नोएडा के अंसारी पब्लिकेशन से प्रकाशित हुई है। संग्रह में श्रीति की सैंतीस व संदीप की पच्चीस कविताएँ उन भावनाओं को अभिव्यक्त करती है, जिनसे हर दिल का किसी न किसी रूप से वास्ता हो सकता है। इनमें न कल्पनीयता है न बड़े-बड़े बोझिल शब्दों का आडम्बर। श्रीति सरलता से कहती है-

कागज पर लिखूं/ या / दिल पर..../
बस प्रेम लिखूं/ मंदिर में हो/ या / दिल में....

विश्वास से कहती है-

विश्वास उन बुजुर्गों का /
जो अपना सब कुछ कर देते है/
बच्चों के नाम / विश्वास परस्पर होता है/
जिसमें बंधे होते है/ हम सब ।

तो ये कहते, श्रीति के उत्साह का पारावार नहीं रहता कि –

मेरे घर का आंगन / कभी उदास नहीं होता
क्योंकि / यहां चहकती है चिड़िया
खिलते है फूल / और गुनगुनाते है भौंरे....

वे इस बात से भी चिंतित है कि आधुनिकता की आड़ में हम यह तक नहीं जानते कि हमारे पड़ौस में कौन रहता है, तो मिलने मांगने के बहाने पडौस से जो रिश्ते बनते थे अब वो रिश्ते भी नहीं रहे–

अब पड़ौस की चाची/नहीं मांगती/
एक कटोरी शक्कर हमसे
ना ही हम उससे/ दही जमाने के लिए जामन
अब पड़ौसी की/ दहलीज पर बैठ/
गपशप नहीं करते हम

या परीक्षा देती लड़कियां में –

सारी जिंदगी ही/
देती रहनी हैं उन्हें परीक्षाएं/ चाहे अनचाहे
खुद के सोचने से/ या/ किसी के कहने पर
बिना किसी परिणाम/
की अपेक्षा के..

यह कविता गहरे सवाल छोड़ती खामोशी को भेदती हुई समाप्त होती है। पूरी कविता मानो उस पीड़ा की तान पर रची गई है जो पीड़ा आज पृथ्वी की उस आधी आबादी की पीड़ा है, जिसे स्त्री कहते है। जब यह कविता खत्म होती है तो आधी आबादी के लिए शोकगीत की गूंज मन व तन में छोड़ जाती है। ऐसी ही एक और कविता है, विज्ञापनों में नहीं दिखते गरीबी से जूझते लोग या फिर दूध के लिए तरसते बच्चे। हाट जाती

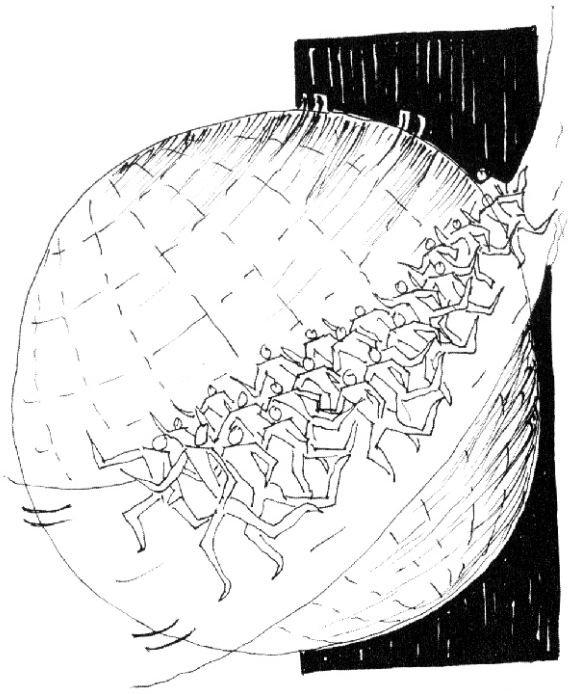

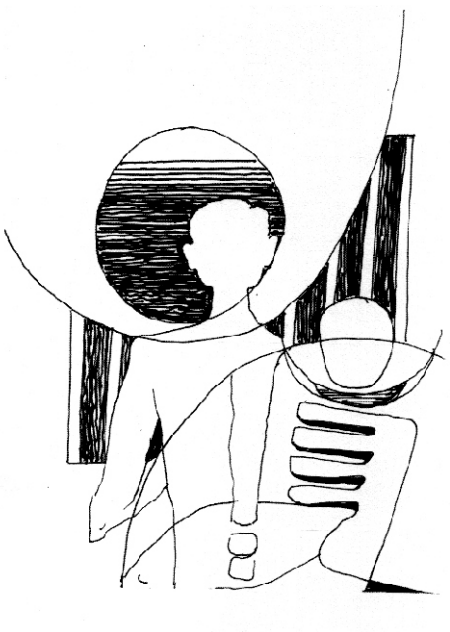

महिलाएँ नारी के स्वाभिमान के प्रति एक प्रकार की अतिरिक्त ऊर्जा से भरी हुई साफ दिखाई दे रही है। ये कविता नारी के मेल-जोल, सखी-सहेली से युक्त कर रही है तो संग्रह की प्रवृत्ति से बचाते हुए संतोष का पाठ भी पढ़ा रही है।

कहने का आशय यह है कि श्रीति की कविताएं नारी का अधिकार किसी से मांग नही रही है बल्कि नारी को ही जगा कर कह रही है–

एक दिन अचानक/बच्चे बोल उठते है/ मां तुम तो बिल्कुल पिता-सा व्यवहार करने लगी हो।

तब अहसास होता है, मानो एक ऐसे समाज की रचना होगी जिसमें नर और नारी की भिन्न-भिन्न नहीं अपितु सम्मिलित संरचना उभर आयेगी।

एक दिन अचानक/
सदा के लिए सो गए बाबा
और खूंटी रह गई/
सदा के लिए अकेली

मर्म को स्पर्श करती यह

कविता बहुत खास है जो आम कविताओं से बहुत अलग है और श्रीति की संवेदनशीलता को बहुत गहराई से नापती है। ऐसी ही दरवाजा और दहलीज कविता है जो अपने आप में व्यापकता लिए है। दहलीज पर न सिर्फ रंगोली बनाई जाती है बल्कि आरती व नजर भी उतारी जाती है तथा इंतजार के साथ हिदायतें भी दी जाती है। बेटियां, सुबह, सफर, कोना जो सिर्फ कहने भर को कोना है, वहां स्मृतियों का खज़ाना अटा पड़ा है जो यादों की पोटली खोलते ही सजीव हो उठता है। कचरे के डिब्बे में सर्दी-गर्मी बारिश की परवाह न कर ममत्व की तलाश में निकलती माँ की ममता हो या दुआ में उठे हाथ हो, पुराने दिन, पुराने चावल से होते है जो महकते है पूरे समय और महकाते भी है। तो बात इन्सानियत की हो या यथार्थ की श्रीति ज़िंदगी की सच्चाईयों से रूबरू होने के बावजूद एक क्षण को भी प्रकृति और प्रेम से स्वयं को विलग नहीं होने देती।

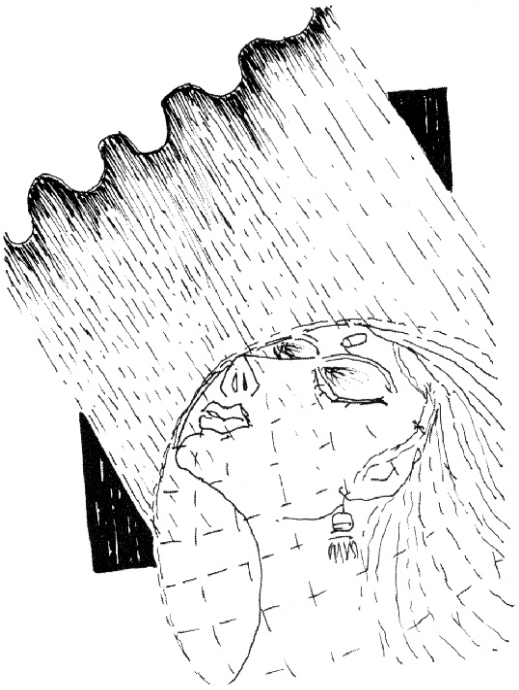

सहज, सरल एवं सुबोध भावाभिव्यक्ति की इन रचनाओं में विषय वैविध्य के साथ प्रेम की अनुभूतियों के विविधरूप, विविध रंग अंकित है जो साथी के प्रति अपने भरपूर समर्पण, सौहार्द व विश्वास पर विजय पाकर प्रेम में परिणित मुखर हो कह उठता है-

तुम्हारा मौन मुस्कुराना/ और संवेदनहीन होना भी
मेरे लिए सिर्फ एक ही अर्थ रखता है
वह है प्रेम, हमारा प्रेम।

पुस्तक के दूसरे भाग में संदीप की कविताएँ है, जो उनके पहले संग्रह 'केनवास पर शब्द' की तरह ही उम्दा है। अपनी भावनाओं को कविता व रेखांकन में ढालने की कला में सिद्धहस्त संवेदनशील रचनाकार अपने आस-पास के वातावरण, मौसम के ठंडे गरम मिजाज, पक्षियों के कलरव संस्कृति व सरोकार जैसे विषय या मुद्दे को एक खास नजरिए से देखते है। देखते-देखते समझते है और तभी वह संवेदनाओं पर जमी हुई बर्फ को रिश्तों की गर्माहट से तोड़ना चाहते हैं-

रिश्तों की गर्माहट/
जो वक्त आने पर
गला सके-तोड़ सके/
जमी हुई बर्फ
यहां-वहां न जाने कहां कहां!!

संदीप को सिर्फ रिश्तों पर जमी बर्फ को हटाने की ही गरज नहीं है अपितु वो धरा की भी चिंता कर रहे हैं, तितली बन रंग भी बिखराना चाहते हैं तो 'गौरय्या और कविता' अपने सुगठित शिल्प और सारगर्भित भाषा से पाठक को परिचित करवाती है-

गौरेय्या का होना/ कविता का होना है
गर कहीं भी/ उतरती है कविता/तो सच मानिए
कहीं आसपास ही होगी गौरेय्या भी!
बिटिया पर कविता, कागज पर बेआवाज कविता
कहीं ऐसा तो नहीं/ कि बना लिया हो
चिड़िया ने/ मेरी कविता में घोंसला।

चुड़ी की खनकार में कविता तो टूटे सपने में भी कविता। उनकी एकभी कविता ऐसी नहीं जो सोचने के लिए विवश नही करती हो। आजकल सम्मान यूं ही परिहास के पर्याय बन चुके है, इसलिए वो कहते है-

इन्सां बना जन्मा हूँ/ इन्सां ही रहने दो
खुदा मत करो/ मित्रों मुझे बड़ा मत करो

'क्या लौट आते है पिता?' एक बेहतरीन रचना है जिसने अंतरंगता स्थापित करने का कार्य तो किया ही है, साथ ही जवाबदारियों के प्रति सजगता का अहसास भी करवाया है। कविता का एक अर्थ यह भी होता है कि वह सभी का भला चाहती है, हर क्षण परोपकार में खड़ी रहती है, तभी तो संग्रहालय जैसी कविता का जन्म होता है-

मैंने भी सोचा है/ मैं भी करने लगूं संग्रह

बिखरती, बहती, बर्बाद होती जब बूँदों का
मैं बूंद-बूँद बचाना, सहेजना, संग्रह करना चाहता हूँ..

संदीप की कविताओं में परम्पराओं से प्रेम रखने की गुहार है-

मुझे हाट जाना है/हाट ही बन जाना है
डियो, एयर फ्रेशनर, परफ्यूम नहीं/
सौंधी खुशबू मिट्टी की/ सांसों में भरना है
मुझे हाट जाना है....

समय का सच है- **ये मॉल, ये चकाचौंध तुम्हें हो मुबारक तो विनम्रता की पराकाष्ठा है/ जब कभी मिला करो/ फूलों सा खिला करो! बनते हुए अन्जान इस बात से कि वाकई यहां कुछ भी तो नहीं है हमारा!!**

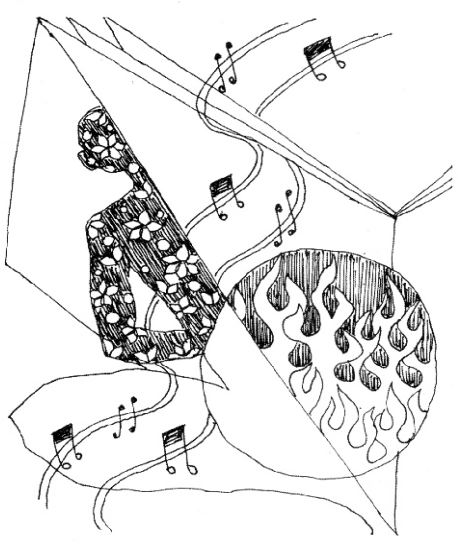

भरपूर संवेदनाओं से भरी एक और कविता है-

सोचता हूँ/ आज / निकल ही पडूं
और हो आऊं पड़ौस में।

एक और कविता देखिए-

मैं चुप हूँ/ इसका मतलब यह नहीं
कि/ सुन नहीं रहा तुम्हें/ और तुम्हारी बातें

श्रीति व संदीप दोनों ही व्यापक दृष्टि के साथ व्यापक सोच रखते है। दोनों की सोच कई जगह एक सी हो गई है जो उनके सफल दाम्पत्य का सच उजागर करती है। मिसाल के तौर पर देखिए-हाट दोनों जाना चाहते हैं, चिड़िया से दोनों का नाता है, प्रेम-विश्वास, संवेदनाएं दोनों की पूंजी है, बिटिया और मां दोनों को प्यारी है तो पिता वट वृक्ष। कहने का आशय यह है कि उनकी कविताओं में अनूठा सामंजस्य दिखाई देता है।

गहरी चिंतन धारा से भरी कविता-

अपनी भूमि/ अपनी रियासत या अपनी सियासत के लिए/ बनते हुए अन्जान/ इस बात से/ कि वाकई यहां/ कुछ भी तो नहीं है हमारा।

दबंगता से ओतप्रोत पंक्तियां देखें-

भरभरा कर/ ढह जाती है सत्ता/
पता भी नहीं चलता
अनोखे हो गए है/ तेवर प्रहार के
विलोम के बरक्स....

परिवेश की सच्चाईयां है-क्या लौट आते हैं पिता? समय की पूकार पर नजर रखती कविता 'पुल', इस बात से, विलोम में लय, गद्दारों को आगाह करते वे कहते है-

छद्म वेष/ कब तक पहनेगा देश?

प्यार की बाते है, पर यहाँ कोई छिछोरा प्रेम नहीं बल्कि जीवन की सौगात लिए वह कहता है-

शब्दों से परहेज को सहेज/ मैं चाहता हूँ लिखना
तुम्हें एक प्रेम पत्र/ बड़ा सा/ बहुत बड़ा/
पाताल से आकाश तक का विस्तार लिए...

प्रेम से परिपूर्ण कुछ पंक्तियां-

मैंने कहा नहीं/ तुमने सुन लिया/ मैंने जताया नहीं/
तुमनेमान लिया/ मैंने पढ़ाया नहीं/
तुमने गुन लिया/ मैं समझ गया/ हम प्रेम में हैं!

बिना कोई वादा किए वो इस बात का दिलासा देते हैं कि-

दिला सकता हूँ तुम्हें/ इस बात का यकी/
कि तुम्हें/ भूलूंगा कभी नहीं!

कविता के साथ दिए संदीप के सशक्त व समर्पित रेखांकनों को देखकर पुस्तक की फ्लैप पर कला समीक्षक संजय पटेल के लिये इस शीर्षक से सहमत हुआ जा सकता है कि 'शब्द से सुरीली जुगलबंदी करते रेखांकन'। कुल मिलाकर कृति स्वागत योग्य एवं संग्रहणीय है।

पदमा राजेन्द्र, 'जलसा' 24, अनुराग नगर, ए.बी.रोड़, प्रेम काम्पलेक्स के पीछे, इंदौर (म.प्र.) मो.-094066 17502

काव्य संग्रह-'कुछ मेरी कुछ तुम्हारी' रचनाकार-श्रीति राशिनकर/संदीप राशिनकर, प्रकाशक-अन्सारी पब्लिकेशन, ग्रेटर नोएड़ा, मूल्य-रूपए 250/- मो.-080853 59770

प्रेम गुप्ता : रंगमंच-विश्व में एक रमता जोगी

- सुनील मिश्र

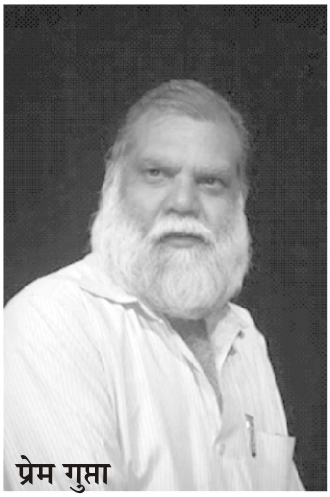
प्रेम गुप्ता

प्रेम गुप्ता के साथ मैत्री निबाहते हुए करीब तीस साल से अधिक हो गये, उनको नब्बे के पहले से ही बेहद जुझारू रंगकर्मी के रूप में भटक-भटककर बच्चों के साथ काम करते हुए देखा है। उस समय के उपलब्ध साधारण साधनों के साथ गुप्ता मध्यप्रदेश में जगह-जगह जाकर कार्यशालाएँ किया करते थे और नाटक मंचन की जमीन तैयार किया करते थे बच्चों के साथ। सागर में बाल संरक्षण गृह के बच्चों के साथ, भोपाल में आशा निकेतन के नि:शक्त बच्चों के साथ, किशोर बालिका गृह के बच्चों के साथ और ऐसी ही अनेक संस्थाओं के साथ काम करते हुए इस आदमी ने अपने आपको होम किया है। साथ में इनके हर जुनून, हर संघर्ष में कंधे से कंधा मिलाकर साध देतीं अर्धांगिनी वैशाली गुप्ता जो स्वयं कल्पनाशील, सोच और दृष्टिसमृद्ध कोरियोग्राफर हैं, ने लगातार कठिन और मुश्किल क्षणों को देखा है। मन देखो तो इतना बड़ा कि किशोर बालिका गृह की बच्चियों के साथ काम करते हुए एक बच्ची बीमार थी, उसे पीलिया हो गया था, तो अधीक्षिका से ज्यादा इनको फिक्र जो स्कूटर में बैठाये-बैठाये उसका इलाज कराते फिरे। प्रस्तुति में जो मिला तो उन बच्चों को दीवाली पर कपड़े दे आये।

कहने और पुनरावलोकन करने से यह बात भावुक कर देती है लेकिन रंगमंच और विशेष रूप से बच्चों के साथ काम करने का इस आदमी का जुनून कमाल का है। यह रास्ता प्रेम गुप्ता ने खुद चुना नहीं तो पुराने भोपाल में चूड़ियों के बड़े कारोबारी का यह बड़ा बेटा आज आराम की रोटी का रहा होता, घरबार जायदाद सब होती लेकिन आमद से अधिक खर्च करने में अग्रणी और हर बार मिले से अधिक खपा देने वाले ये शख्स जब मिले, हाथ झाड़े ही मिले। लेकिन ऐसे कठिन संघर्ष, पीड़ा, तनाव और व्यथा के साथ भी अपनी यात्रा जारी रखी, यह बड़ी बात है।

कारन्त जी ने प्रेम गुप्ता की संस्था का नामकरण चिल्ड्रन्स थिएटर अकादमी किया था। उनकी ही प्रेरणा से य इस ओर आये तो यहीं के होकर रह गये। बच्चों के साथ इनकी तैयार की प्रस्तुतियाँ अनन्य हैं, चिड़ियों की चतुराई, कलिंग, सिर्फ इतिहास नहीं, लालच बुरी बला, एकलव्य का दान, सपनों का महल, एक राष्ट्र एक रंग, आदरांजलि, झाँसी की रानी, आजाद हिन्द के नारे, अंधेर नगरी, मुर्गे का ब्याह, ईदगाह, टिम्बक टू तत्काल याद आये नाम हैं। इनका ईदगाह अन्तिम दृश्यों में रुला देता है। प्रेम गुप्ता को मध्यप्रदेश के अलावा दिल्ली, सतारा आदि शहरों में बड़ी और वृहद कार्यशालाओं में प्रस्तुतियाँ तैयार करने के लिए भी निमंत्रित किया गया है, अब तक गुप्ता लगभग तीन से पाँच हजार बच्चों के साथ बैले भी तैयार कर चुके हैं।

पाँच फुट से कुछ ही इंच बड़े, डिबिया जैसे मुँह पर दोनों ओर कान से शुरू होती हुई घनीभूत दाढ़ी काली से अब पूरी तरह सफेद हो चुकी है। यह सही है कि प्रेम गुप्ता के काम करने के बाद ही बच्चों के साथ काम करने का जुनून भोपाल में फैला और विभा मिश्रा, के.जी. त्रिवेदी, इरफान सौरभ जैसे वरिष्ठ रंगकर्मियों ने इस धारा को पकड़ा लेकिन गुप्ता जितना खटे हैं वह अपना सबकुछ होम कर देने के बाद प्राप्त होने वाले आत्मसुख का अकेला साक्ष्य है। दो बार वे संस्कृति विभाग द्वारा उस्ताद अलाउद्दीन खाँ संगीत अकादमी में बाल रंगमण्डल के निदेशक भी रह चुके हैं।

तीस साल से ज्यादा हुए संस्था चिल्ड्रन्स थिएटर अकादमी को बने हुए जिसमें से समय-समय पर अनेक कलाकार आते-जाते रहे। बच्चों, किशोरों से काम कराना कितना बड़ा जोखिम, यह मैंने उनके साथ अनेक अवसरों और स्थलों पर देखा। क्लास में आने वाले, जरा से गुणी और ज्ञानी हो जाने वाले जिद्दी बच्चों और किशोरवय के कलाकारों में एक तरह की मनमानी, अराजकता और अनुशासन तथा कहे की अव्हेलना का सामना करते भी प्रेम गुप्ता को देखा। पंख ऊगने के बाद उड़ जाने वाले, समर्थन में खड़े होने वालों को स्पर्धी-प्रतिस्पर्धी के रूप में अपने सामने देखने के कड़वे-खट्टे अनुभव भी प्रेम गुप्ता की इस वृहद यात्रा के पड़ाव हैं। कई अवसरों पर उनको फूट-फूटकर रोते भी देखा है लेकिन हर हाल में यह आदमी है रंगमंच का, रंगमंच के लिए अपने साथ-साथ अपनों को भी दाँव पर लगा देने वाला।

प्रेम गुप्ता की रंगयात्रा बहुत कठिन उतार-चढ़ावों से भरी रही है। नाटकों के व्याकरण से लेकर उसकी पूरी की पूरी आचार संहिता को लेकर अपनी एक अलग दृष्टि बनाने वाले इस शख्स ने बहुत पापड़ बेले और मुश्किलों को सहा है। एक खासियत इतने वर्षों में इस आदमी की यह भी देखी कि पास का कोई काम नहीं किया और खर्च से समझौता नहीं किया चाहे कुछ भी बेच-बहा देना पड़े। सर्जनात्मक कार्यों से देश भर की यात्रा करते हुए बरसों-बरस जहाँ-जहाँ गये, नाटक और मंच के लिए जो-जो उपयोगी मिला, पास का सब खर्च करके, उधार करके खरीद लाये। मंच का काम जिस प्रभाव, जरूरत और अपरिहार्यता का होना चाहिए, उसमें कोई कमी न आने पाये। तो संगीत के लिए वाद्य, फिर वह लकड़ी के हों या खासर मिट्टी के, कास्ट्यूम, मुखौटे, आभूषण और दुनिया भर की चीजें जो उनको, उनकी कल्पनाशीलता को अपने काम के लिए अहम लगीं, ले लीं और भारी बक्स, लगेज के साथ भोपाल आकर उतरे।

इतना ही नहीं भोपाल के रंगकर्मियों के लिए प्रेम गुप्ता के दरवाजे हमेशा खुले रहे, जिसको जो सहयोग करना होता, पीछे नहीं हटे। इस बात की खिन्नता लिए हुए भी बस यही अपराध हर बार करते रहे कि लोग उनसे बहुत सा दुर्लभ और कीमती सामान अपनी जरूरत के लिए ले जाते रहे, उनमें से कई ने उनका सामना वापस नहीं किया। तो ऐसी और इस तरह की अनेक क्षतियों के साथ भी प्रेम गुप्ता की रंग-यायावरी जारी रही। प्रेम गुप्ता ने भोपाल से लेकर देश के अनेक हिस्सों में जो अपनी एक लम्बी यात्रा की है उसका परिणाम उनके लिए लिए आत्मसुख रहा है। इस तरह उन्होंने आत्मसंघर्ष में आत्मसुख प्राप्त करने का एक तरह से जीवनभर का जोखिम लिया। निश्चित रूप से इस काम में उनकी अर्धांगिनी, जानी-मानी कोरियोग्राफर वैशाली गुप्ता की बहुत बड़ी भूमिका है।

यही कारण रहा कि जब पहली बार बच्चों के लिए काम करने वाली राष्ट्रीय स्तर की शीर्षस्थ संस्था नटरंग ने उनको अभी रेखा जैन बाल रंगमंच सम्मान के लिए सम्मानित करने नईदिल्ली बुलाया तो उनके चेहरे पर मैंने मुस्कराहट देखी। उनको सम्मान पट्टिका, पचास हजार रुपये की राशि वहाँ प्राप्त हुई। ओडिसी की सुप्रतिष्ठित नृत्यांगना माधवी मुद्गल ने उनको यह सम्मान प्रदान किया।

आपका पथ सच्चा, विनयशील और नैतिक है तो आप कभी न कभी, कहीं न कहीं तो सार्थक ढंग से पूछे जाओगे ही, बात अलग है कि देर-सवेर होती है, अंधेर नहीं हुआ, यही क्या कम है। सम्मान लेकर लौटने के बाद प्रेम गुप्ता ने चाव से सबकुछ दिखाया, वे तब नहीं जान पाये थे कि इस बार आँख मेरी भीगी है.....।

मो.-09425024579, भोपाल (म.प्र.) ■

समवेत....

पुस्तक लोकार्पण

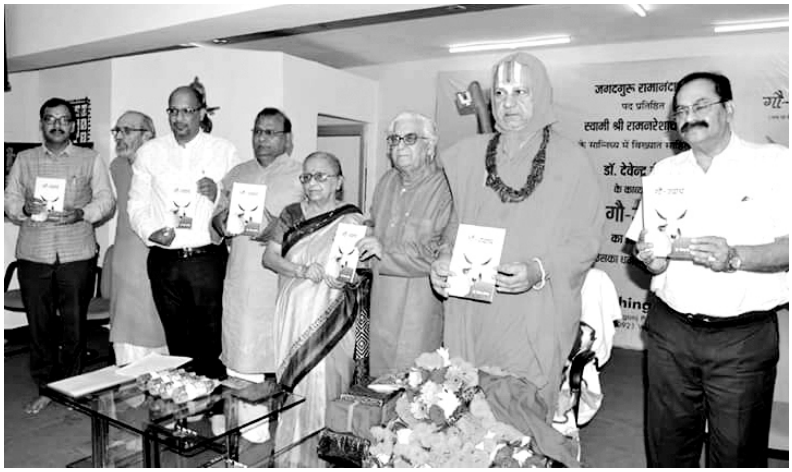

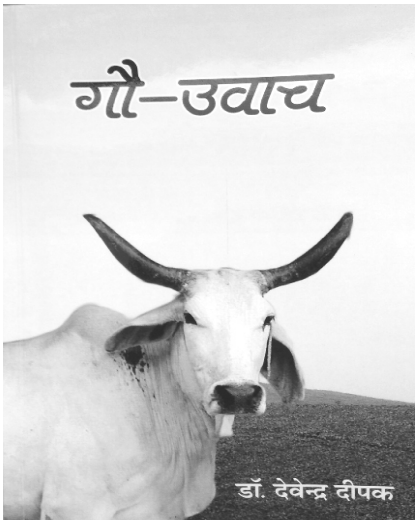

गाय मात्र पशु नही, अपितु भारतीय संस्कृति का मूल आधार - स्वामी राम नरेशाचार्य

भोपाल। गाय मात्र पशु नहीं बल्कि भारतीय संस्कृति का आधार और उसकी धुरी है, यह उदगार हैं जगतगुरु रामानन्दाचार्य पद प्रतिष्ठित स्वामी श्री रामनरेशाचार्य के उन्होंने यह विचार प्रकट करते हुए वर्तमान समय में गाय पर की जा रही राजनीति को भी दु:खद बताया, वे इंद्रा पब्लिसिंग हाउस द्वारा माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवम संचार विश्वविद्यालय के सभागार में वरिष्ठ रचनाकार डॉ देवेंद्र दीपक के सद्य प्रकाशित कविता संग्रह 'गौ उवाच' के लोकार्पण अवसर पर बोल रहे थे ।

कार्यक्रम के प्रारम्भ में मां सरस्वती के चित्र पर माल्यार्पण एवम दीप प्रज्ज्वलन अतिथियों द्वारा किया गया,वरिष्ठ गीतकार श्री राजेन्द्र शर्मा 'अक्षर' ने मां मुझे वह मंत्र वर दे, सरस्वती वंदना प्रस्तुत की। इस अवसर पर पुस्तक के प्रकाशक श्री मनीष गुप्ता ने पुस्तक प्रकाशन के बारे में प्रकाश डालते हुए इस कृति को गौ वंश रक्षा की दिशा में महत्वपूर्ण कदम बताते हुए, दीपक जी को साधुवाद दिया। अपने स्वागत उद्बोधन में विश्वविद्यालय की और से श्री लाजपत आहूजा ने उपस्थित लोगों का आभार प्रकट करते हुए आज की पत्रकारिता एवम इस पुस्तक के महत्व को रेखांकित करते हुए,सभी का अभिनन्दन एवम आभार माना।

इस अवसर पर आयोजन के उत्सव पुरुष डॉ. देवेंद्र दीपक का स्वामी जी ने स्वस्ति वाचन मंत्रों के साथ भाल पर तिलक लगा कर, पुष्पहारों एवम शॉल उड़ा कर स्वागत किया। डॉ. देवेंद्र दीपक ने इस अवसर अपने उदबोधन में कहा कि मैंने जीवन में जो भी दायित्व मिला उसका निर्वहन पूरी निष्ठा व ईमानदारी से किया है, आपने मुझे जो चादर सममान पूर्वक उड़ायी है, मैं उसे बेदाग रखूंगा उन्होंने कबीर का स्मरण करते हुए ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया का उल्लेख किया। इस अवसर पर अपनी कृति पर संक्षिप्त में अपनी बात रखते हुए उन्होंने अपनी 'देह दान' करने की महत्वपूर्ण घोषणा की जिसके सारे सदन ने करतल

ध्वनि से स्वागत किया। इस अवसर पर, स्वामी जी एवम दीपक जी का स्वागत नगर की अनेक साहित्यिक एवम सामाजिक संस्थाओं द्वारा किया गया, जिनमें प्रमुख रूप से साहित्य अकादमी के निदेशक डॉ. उमेश सिंह, मध्यप्रदेश लेखक संघ के डॉ. राम वल्लभ आचार्य, अखिल भारतीय साहित्य परिषद के श्री श्यामबिहारी सक्सेना, कला मंदिर भोपाल से डॉ. गौरीशंकर शर्मा गौरीश, तुलसी साहित्य अकादमी से डॉ. मोहन तिवारी आनन्द, श्री भंवरलाल श्रीवास, सम्पादक 'कला समय' श्री सजल मालवीय सम्पादक 'शिवम् पूर्णा' अर्घ्य कला समिति की और से वरिष्ठ रंगकर्मी श्री प्रेम गुप्ता प्रमुख थे।

इस अवसर पर कृति केंद्रित महत्वपूर्ण विमर्श भी आयोजित किया गया, जिसमें कृति पर केंद्रित समीक्षात्मक आलेख पढ़े गए, जिन्होंने इस करती पर विस्तार से गम्भीर विमर्श किया उनमें डॉ प्रेम भारती, डॉ. बिनय राजाराम, डॉ. कृष्ण गोपाल मिश्र, डॉ. मयंक चतुर्वेदी एवम घनश्याम मैथिल 'अमृत' थे। कार्यक्रम में इस अवसर पर डॉ. उदय प्रताप सिंह ने अपनी बात रखते हुए डॉ. देवेंद्र दीपक को भारतीय संस्कार और संस्कृति से संपृक्त महत्वपूर्ण व्यक्तित्व बताया जो अपने सृजन और आचरण से समाज को एक नई दिशा दे रहे हैं। इस अवसर पर मुख्य वक्ता स्वामी जी ने 'मीडिया और उसका धर्म' विषय पर बोलते हुए आज मीडिया की शुचिता को लेकर चिंता प्रकट की उन्होंने का की वर्तमान में पत्रकारों को दर्शन और आध्यात्म की शिक्षा से जोड़ना आवश्यक है क्योंकि मीडिया में लाभ और लोभ की बढ़ती लिप्सा से इसकी विश्वसनीयता संदिग्ध हो गयी है, जो हमारे समाज के लिए शुभ संकेत नहीं है। कार्यक्रम में श्रीमती देवेंद्र दीपक ने मंचस्थ अतिथियों को इस अवसर पर आकर्षक स्मृति चिन्ह भेंट कर सम्मानित किया, इस आयोजन में पत्रकारिता से जुड़े विद्यार्थी एवम अनेक साहित्यप्रेमी प्रबुद्ध जन बड़ी संख्या में उपस्थित थे, कार्यक्रम का सफल संचालन डॉ. साधना बलबटे ने किया।

रपट: घनश्याम मैथिल 'अमृत' भोपाल
(कला समय प्रतिनिधि)

राज्य शिखर सम्मान के लिए नामांकन/अनुशंसाएँ 25 सितम्बर तक आमंत्रित

भोपाल। संस्कृति विभाग ने कला, साहित्य, नृत्य, संगीत एवं दुर्लभ वाद्य वादन की 7 विभिन्न विविध विधाओं में राज्य शिखर सम्मान के लिए नामांकन/अनुशंसाएँ आमंत्रित की हैं। यह सम्मान वर्ष 2016 एवं 2017 के लिए अलग-अलग दिया जाएगा। प्रत्येक सम्मान में एक-एक लाख रूपये एवं प्रशस्ति पत्र दिया जाएगा। संस्कृति संचालनालय में 25 सितम्बर तक आवेदन पहुँचना जरूरी किया गया है। आवेदक मध्यप्रदेश का निवासी अथवा संबंधित का कार्य क्षेत्र मध्यप्रदेश का होना चाहिए।

सम्मान के लिये नियत विधाएं

यह सम्मान साहित्य (हिन्दू/उर्दू संस्कृति) विधा में 2016 के लिए, हिन्दी साहित्य (2016) शिखर सम्मान, रूपंकर कलाएँ, नृत्य नाटक, संगीत, आदिवासी एवं लोककलाएँ एवं दुर्लभ वाद्य वादन का वर्ष 2016 एवं 2017 के लिए पृथक-पृथक होगा। प्रत्येक सम्मान में एक-एक लाख रूपये के साथ प्रशस्ति पत्र दिया जायेगा। शिखर सम्मान सृजन-सक्रिय कलाकारों एवं साहित्यकारों को उच्च सृजनात्मकता, असाधारण उपलब्धि, अनवरत दीर्घ साधना तथा रचनात्मक अवदान के लिए हर साल दिये जाते हैं।

सम्मान हेतु पात्रता

दोनों वर्ष के सम्मान के लिए पृथक-पृथक आवेदन, सम्बंधित विधाओं के प्रति सार्थक सरोकार और रूझान रखने वाले समीक्षक, लेखक, विचारक, कला-रसिक एवं आलोचक ख्याति प्राप्त साहित्यकार/कलाकार के लिए नामांकन या अनुसंशाएँ भेज सकेंगे। कलाकार या साहित्यकार स्वयं भी आवेदन कर सकेंगे।

शिखर सम्मान के लिए जूरी करेगी निर्णय

विभाग द्वारा शिखर सम्मान के लिए गठित जूरी समिति के समक्ष समस्त प्राप्त प्रस्ताव प्रस्तुत किये जाएंगे। जूरी की सर्व-सम्मत अनुशंसाओं पर राज्य सरकार निर्णय लेगी।

डॉ. दया प्रकाश सिन्हा को

डॉ. रामकुमार वर्मा सम्मान

भारतीय हिन्दी परिषद् का 43 वॉ अधिवेशन राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय नागपुर (महा.) द्वारा भारत के विश्वविद्यालयों के हिन्दी प्राध्यापकों और प्राचार्यों की एक अखिल भारतीय संस्था है। इसके नागपुर (महाराष्ट्र) में संपन्न (43 वें) अधिवेशन में 8 सितम्बर 2017 को डॉ. दयाप्रकाश सिन्हा को उनके नाटको द्वारा हिन्दी भाषा में उत्कृष्ट योगदान के लिए 'डॉ. रामकुमार वर्मा' सम्मान प्रदान किया गया। उन्हें कला समय परिवार की ओर से अनेक शुभकामनाएँ।

ज्ञान चतुर्वेदी सम्मान : 2017

वरिष्ठ और समर्थ व्यंग्यकार कैलाश मंडलेकर को

अंजनी चौहान, विजय राय, ब्रजेश कानूनगो की निर्णायक समिति ने सर्वसम्मति से व्यंग्यकार कैलाश मंडलेकर को उनके श्रेष्ठ व्यंग्य लेखन के लिए वर्ष 2017 का 'ज्ञान चतुर्वेदी सम्मान' प्रदान करने का निर्णय लिया है। यह सम्मान 'दूसरी परंपरा' पत्रिका द्वारा इसी वर्ष से शुरू किया गया है।

कैलाश मंडलेकर का जन्म 9 सितंबर, 1956 को हरदा, मध्यप्रदेश में हुआ। सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन। अब तक व्यंग्य की तीन किताबें प्रकाशित। मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी पुरस्कार सहित अनेक संस्थाओं से सम्मानित।

सम्मान के संयोजक सुशील सिद्धार्थ के अनुसार सम्मानित लेखक को उत्तरीय, प्रतीक चिह्न, सम्मान पत्र और 15000/- की सम्मान राशि भेंट की जाएगी। सम्मान समारोह दिसंबर में भोपाल में आयोजित किया जाएगा।

राधेलाल बिजघावने पर एकाग्र

'राग भोपाली' पत्रिका का लोकार्पण

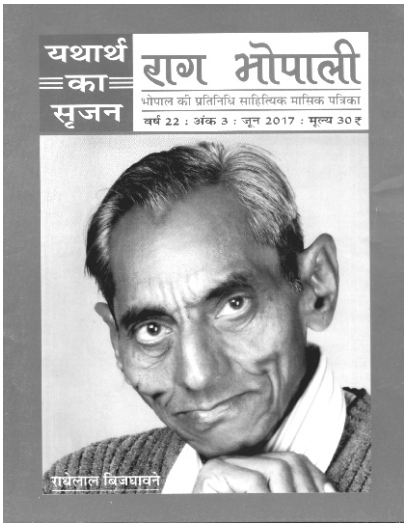

दुष्यंत कुमार पाण्डुलिपि संग्रहालय के सभागार में दिनांक 3 सितम्बर 2017 की शाम भोपाल शहर की साहित्यिक पत्रिका 'राग भोपाली' का लोकार्पण शहर के वरिष्ठ साहित्यकारों के द्वारा किया गया। 'राग भोपाली' का माह जून 2017 का अंक वरिष्ठ साहित्यकार राधेलाल बिजघावने पर एकाग्र है। इस विशेषांक का लोकार्पण में अरूण तिवारी प्रेरणा पत्रिका के सम्पादक, राजेश जोशी, शशांक, बलराम गुमास्ता, जगदीश किंजल्क, रमाकान्त श्रीवास्तव, माता प्रसाद मिश्र, राधेलाल बिजघावने, अशोक निर्मल, राजुरकर राज तथा 'राग भोपाली' पत्रिका के सम्पादक शैलेन्द शैली आदि की उपस्थिति में अंक का लोकार्पण हुआ। इस अवसर पर राधेलाल बिजघावने ने अपने संग्रह से कुछ कविताओं का पाठ किया तथा विशेषांक पर अपनी प्रसन्नता जाहिर की मंच पर अध्यक्षता रमाकांत श्रीवास्तव ने की। वक्ताओं ने राधेलाल बिजघावने के कृतित्व पर इस संवाद में साझा किया सर्वप्रथम जगदीश किंजल्क ने उनकी कविता तथा मुंशी प्रेमचंद के भाँति कवि की उपमा दी। राधेलाल बहुमुखी प्रतिभा के धनी है। उनके रेखाचित्र, उपन्यास, पुस्तक, समीक्षा, कहानी तथा स्तम्भ लेखन से जुड़े होने की बात कही उनकी 32 किताबे प्रकाशित हो चुकी है। अरूण तिवारी ने कहा राधेलाल बिजघावने की लगभग 4500 रचना प्रकाशित हो चुकी हैं।

कला समय पाठक मंच के संयोजक गोपेश वाजपेयी

14 सितम्बर हिन्दी दिवस पर कला समय के संपादकीय कार्यालय जे. 191 मंगल भवन, ई-6 महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल में वरिष्ठ कवि लेखक लक्ष्मीकांत जवणे की गरिमामयी उपस्थिति में कला समय पत्रिका को आम पाठक तक पहुँचाने के उद्देश्य से कला समय पत्रिका के संपादक श्री भँवरलाल श्रीवास की अध्यक्षता में विचार गोष्ठी का आयोजन किया गया। जिसमें पत्रिका को जन-जन तक पहुँचाने को लेकर कला-समय पाठक मंच के संयोजक के रूप में गोपेश वाजपेयी को नियुक्त किया गया। डॉ. गीता गुप्त, ए.के. सिंह, डॉ.अलका सक्सेना, डॉ. प्रभात पांडे एवं सजल मालवीय ने हार्दिक बधाईयाँ दी।

आपके पत्र

प्रिय भाई श्रीवास जी! नमस्कार!

दो पत्रिकाएँ, अप्रैल-मई और जून-जुलाई (2017) अंक एक साथ मिलीं।

आदरणीय श्री सजल मालवीय के माध्यम से मैं आप की नज़र में आया यह मेरा सौभाग्य है! आप दोनों का हृदय से आभार! कला, साहित्य और संस्कृति को सहेजती हुई यह पत्रिका एक जीवंत दस्तावेज़ है!

शुभास्ते सन्तु पन्थान:

विज्ञान व्रत, नोएडा(उ.प्र.)

सम्पादक जी

कला समय (द्वै.)

सादर अभिवादन

कला समय (द्वै.) जून-जुलाई 17 मिली। पत्रिका पढ़कर। देखकर आत्मतृप्त हो गयी। भूमंडलीकरण, उदारीकरण के दौर में यह पत्रिका एक उत्कृष्ट साहित्यिक, सांस्कृतिक, उच्चस्तरीय दस्तावेज है, जो हिन्दी की पत्रिकाओं में आयी कमी पूरी करती है। पत्रिका की हर सामग्री रोचक, पठनीय, ज्ञानवर्धक, सारगर्भित है। कला, साहित्य की इस उच्च स्तरीय पत्रिका के कुशल सम्पादन हेतु बधाई। पत्रिका की उत्तरोत्तर प्रगति हेतु शुभकामनाएँ।

भवदीया

वंदना सक्सेना, भोपाल(म.प्र.)

देह एक वस्तु नहीं है, यह एक स्थिति है, यह दुनिया पर हमारी पकड़ है और हमारी तर्कसंगत कल्पनाओं का खाका है। -सिमोन द बुवा

महिला प्रतिभाएँ वक्र रेखाओं में

– निर्मिश ठाकर

महादेवी वर्मा

सुधा शिवपुरी

सोनिया गाँधी

मीना कुमारी

सत्यमेव जयते

श्री नरेन्द्र मोदी
प्रधानमंत्री

जलवायु परिवर्तन विज्ञान एक्सप्रेस ट्रेन

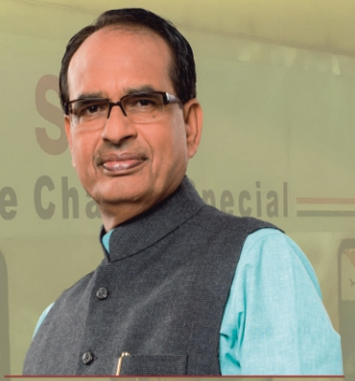

श्री शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

प्रदर्शनी निःशुल्क

जलवायु परिवर्तन विषय में रूचि रखने वाले विद्यार्थियों, शिक्षकों, युवा वर्ग एवं समस्त नागरिकों के लिए एक सुअवसर

प्रदर्शनी को देखने आएं **जलवायु परिवर्तन** विषय पर अपना ज्ञान बढ़ायें

एप्को द्वारा स्कूली विद्यार्थियों के लिये विशेष कार्यक्रम

समय प्रातः 10 बजे से सायं 5 बजे तक

रेल्वे स्टेशन	दिनांक
आमला	03 अगस्त से 06 अगस्त 2017
हबीबगंज	07 अगस्त से 09 अगस्त 2017
बीना	10 अगस्त से 12 अगस्त 2017
खजुराहो	13 अगस्त से 14 अगस्त 2017

आयोजक : पर्यावरण नियोजन एवं समन्वय संगठन (एप्को), पर्यावरण विभाग, म.प्र. शासन

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

आकल्पन : म.प्र. माध्यम/2017

D-81972

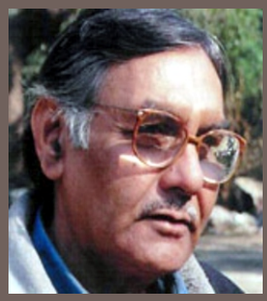

विज्ञान व्रत

जन्म : 17 अगस्त 1943

जन्म-स्थान : ग्राम तेड़ा, मेरठ (उ.प्र.)

शिक्षा : एम.ए. फाइन आर्ट (आगरा), डिप्लोमा इन फाइन आर्ट (राजस्थान)

प्रकाशन : 'बाहर धूप खड़ी है', 'चुप की आवाज़', 'जैसे कोई लौटेगा', 'तब तक हूँ'(सभी ग़ज़ल-संग्रह) प्रकाशित, उपन्यास, ग़ज़ल-संग्रह, बाल गीत संग्रह प्रकाशनाधीन। ✧ 'सप्तपदी'(दोहा-संग्रह) में दोहे प्रकाशित, ✧ लेखक की पेंटिंग्स पर आधारित कैलेंडर का प्रकाशन।

सम्मान/ पुरस्कार : 'वातायन'(लंदन), 'समन्वय'(सहारनपुर), 'सुरुचि'(गुड़गांवा), 'परम्परा'(बिजनौर), 'कंवल सरहदी'(मेरठ) द्वारा सम्मानित। राज्य ललित कला अकादमी (उ.प्र.) द्वारा पुरस्कृत।

चित्र प्रदर्शनियाँ : ✧ लंदन, नाटिंघम, यॉर्क, मुंबई, नई दिल्ली, चंडीगढ़, गोवा, इलाहाबाद आदि स्थानों पर 20 से अधिक एकल चित्र प्रदर्शनियाँ। ✧ 30 से अधिक राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय चित्र प्रदर्शनियों में भागीदारी। ✧ अनेक बार समूह तथा विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय कला-शिविरों में सक्रिय भागीदारी। ✧ राष्ट्रपति भवन, ललित कला अकादमी (दिल्ली), फाइन आर्ट म्यूज़ियम (चंडीगढ़), जवाहर कला केन्द्र (जयपुर), राज्य ललित कला अकादमी (लखनऊ), साहित्य कला परिषद् (दिल्ली) तथा देश-विदेश के प्रतिष्ठित संस्थानों में चित्र संग्रहीत।

उपलब्धियाँ : इंडियन सोसायटी ऑफ आथर्स के सदस्य ✧ 'वापसी' टी.वी. धारावाहिक के लिए गीत एवं अभिनय। ✧ पेंटिंग्स, रेखाचित्र और रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। ✧ सुप्रसिद्ध गायक जगजीत सिंह, धनंजय कौल और निशांत अक्षर द्वारा लेखक की ग़ज़लों का गायन। ✧ 'चुप की आवाज़'- ग़ज़लों का ऑल्बम।

निवास : एन 138, सैक्टर 25, नोएडा-201301

फोन : 0120-2535138 (निवास) मो.-98102 24571

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वात्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा दृष्टि ऑफसेट, 36-37, प्रेस काम्पलेक्स, जोन नं-1, एम.पी. नगर, भोपाल से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक-भँवरलाल श्रीवास